तदहं संप्रवक्ष्यामि लोकानां हितकाम्यया।
येन विज्ञानमात्रेण सर्वज्ञत्वं प्रपद्यते ॥ ३ ॥

टीका—मैं लोकों के हित की वाञ्छा से उसको कहूंगा जिस के ज्ञानमात्र से सर्वज्ञता प्राप्त हो जाती है ॥३॥

मूर्खशिष्योपदेशेन दुष्टस्त्रीभरणेन च।
...तैः संप्रयोगेण पण्डितोप्यवसी-
...॥ ४ ॥

—निर्बुद्धिशिष्यों को पढ़ाने से, दुष्ट स्त्री ...ण से और दुखियों के साथ व्यवहार करने ...त भी दुःख पाता है ॥ ४॥

...र्या शठं मित्रं भृत्यश्चोत्तरदायकः।
...गृहे वासो मृत्युरेव न संशयः ॥५॥

दुष्ट स्त्री, शठ मित्र, उत्तर देनेवाला दास ...ले घर में वास ये मृत्युस्वरूपही हैं। नहीं ॥५॥

धनं रक्षेद्दारान्रक्षेद्धनैरपि।
...रक्षेद्दारैरपि धनैरपि॥ ६॥

टीका—आपत्तिनिवारणकरने के लिये धन को बचाना चाहिये । धन से भी स्त्री की रक्षा करना चाहिये । सब काल में स्त्री और धनों से भी अपनी रक्षा करनी उचित है ॥ ६ ॥

आपदर्थे धनं रक्षेच्छ्रीमतश्च किमापदः । कदाचिच्चलिता लक्ष्मीः संचितोऽपि विनश्यति ॥ ७ ॥

टीका—विपत्ति निवारण के लिये धन की रक्षा करनी उचित है । क्या श्रीमानों को भी आपत्ति आती है हां कदाचित् देवयोग से लक्ष्मी भी चल जाती उस समय संचित भी नष्ट हो जाता है ॥

यस्मिन्देशे न सन्मानो न वृत्तिर्न
न्धवः । न च विद्यागमोप्यस्ति वा
न कारयेत् ॥ ८ ॥

टीका—जिस देश में न आदर न
बन्धु न विद्या का लाभ वहां वा
चाहिये ॥ ८ ॥

धनिकः श्रोत्रियो रा

पञ्चमः । पञ्च यत्र न विद्यन्ते न तत्र दिवसं वसेत् ॥ ९ ॥

टीका—धनिक, वेद का ज्ञाता ब्राह्मण, राजा, नदी और पांचवां वैद्य ये पांच जहां विद्यमान न रहैं तहां एक दिन भी वास नहीं करना चाहिये ॥ ९ ॥

लोकयात्रा भयं लज्जा दाक्षिण्यं त्यागशीलता । पञ्च यत्र न विद्यन्ते न कुर्य्यात्तत्र संगतिम् ॥ १० ॥

टीका—जीविका, भय, लज्जा, कुशलता, देने की ...कृति जहां पांच ये नहीं वहां के लोगों के साथ ...ति करना न चाहिये ॥ १० ॥

...नीयात्प्रेषणे भृत्यान् वान्धवान् ...ागमे । मित्रं चापत्तिकाले तु भार्यां ...वक्षये ॥ ११ ॥

-काम में लगाने पर सेवकों की, दुःख आने ...वों की, विपत्तिकाल में मित्र की और विभ-...होने पर स्त्री की परीक्षा होजातीहै ११॥

...व्यसने प्राप्ते दुर्भिक्षे शत्रुसंक-

टे। राजद्वारे श्मशाने च यस्तिष्ठति स बांधवः ॥ १२ ॥

टीका—आतुर होने पर दुःख प्राप्त होने पर काल पड़ने पर वैरियों से संकट आने पर राजा के समीप और स्मशान पर साथ रहता वही बन्धु है ॥ १२ ॥

यो ध्रुवाणि परित्यज चाध्रुवं परिसेवते। ध्रुवाणि तस्य नश्यन्ति ह्यध्रुवं नष्टमेव हि ॥ १३ ॥

टीका—जो निश्चित वस्तुओं को छोड कर अ-निश्चित की सेवा करताहै उस की निश्चित वस्तुओं का नाश होजाता है अनिश्चित तो नष्टही हैं॥१३॥

वरयेत्कुलजां प्राज्ञो विरूपामपि कन्य-काम्। रूपशीलां न नीचस्य विवाहः सदृशे कुले ॥ १४ ॥

टीका—बुद्धमान् उत्तम कुल की कन्या कुरूपा भी हो उसे वरे। नीच कुल की सुन्दरी हो तो भी उसको नहीं इस कारण कि विवाह तुल्य कुलमें विहितहै १४

नदीनां शस्त्रपाणीनां नखीनां शृंगिणां

तथा । विश्वासो नैव कर्त्तव्यः स्त्रीषु राज-कुलेषु च ॥ १५ ॥

टीका—नदियों का, शस्त्रधारियों का, नखवाले और सींगवाले जन्तुओं का स्त्रियों में और राज-कुल पर विश्वास नहीं करना चाहिये ॥ १५ ॥

विषादप्यमृतं ग्राह्यममेध्यादपि काञ्चन-म् । नीचादप्युत्तमां विद्यां स्त्रीरत्नं दुष्कु-लादपि॥ १६ ॥

टीका—विषमें से भी अमृतको, अशुद्ध पदार्थों में से भी सोनेको, नीच से भी उत्तम विद्या को और दुष्टकु-ल से भी स्त्रीरत्न को लेना योग्य है ॥ १६ ॥

स्त्रीणां द्विगुण आहारो लज्जा चापि चतुर्गुणा । साहसं षड्गुणश्चैव कामश्चा-ष्टगुणस्स्मृतः ॥ १७ ॥

टीका—पुरुषसे स्त्रियों का आहार दूना, लज्जा चौ-गुनी, साहस छै गुना और काम अठगुना अधिक होताहै ॥ १७ ॥

इति प्रथमोऽध्यायः ।

अनृतं साहसं माया मूर्खत्वमतिलोभता।
अशौचत्वं निर्दयत्वं स्त्रीणां दोषाः स्व-
भावजाः ॥१ ॥

टीका—असत्य, बिना विचार किसी काममें झट-
पट लगजाना, छल, मूर्खता, लोभ, अपवित्रता और
निर्दयता ये स्त्रियों के स्वाभाविक दोषहैं ॥ १ ॥

भोज्यं भोजनशक्तिश्च रतिशक्तिर्वरा-
ङ्गना । विभवो दानशक्तिश्च नाल्पस्य
तपसः फलम् ॥ २ ॥

टीका—भोजन के योग्य पदार्थ और भोजन की
शक्ति रति की शक्ति सुन्दर स्त्री ऐश्वर्य और दान
शक्ति इनका होना थोडे तप का फल नहीं है ॥२॥

यस्य पुत्रो वशीभूतो भार्या छन्दानु-
गामिनी । विभवे यश्च सन्तुष्टस्तस्य
स्वर्ग इहैव हि ॥ ३॥

टीका—जिसका पुत्र वश में रहताहै और स्त्री इच्छा
के अनुसार चलती है और जो विभवमें संतोष रखता
है उसको स्वर्ग यहां ही है ॥ ३ ॥

ते पुत्रा ये पितुर्भक्ताः स पिता यस्तु पोषकः। तन्मित्रं यत्र विश्वासः सा भार्य्या यत्र निर्वृतिः ॥४॥

टीका—वेई पुत्र हैं जे पिता की भक्त हैं। वही पिता है जो पालन करताहै। वही मित्रहै जिस पर विश्वास है। वही स्त्री है जिस से सुख प्राप्त होताहै ॥ ४ ॥

परोक्षे कार्य्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम्। वर्जयेत्तादृशं मित्रं विषकुम्भं पयोमुखम् ॥ ५ ॥

टीका—आंखके ओट होने पर काम बिगाड़ै, सन्मुख होनेपर मीठी २ बात बनाकर कहै ऐसे मित्रको मुहड़ेपर दूधसे और सब विष से भरे घडे के समान छोड देना चाहिये ॥ ५ ॥

न विश्वसेत्कुमित्रे च मित्रे चापि न विश्वसेत्। कदाचित्कुपितं मित्रं सर्वं गुह्यं प्रकाशयेत् ॥ ६ ॥

टीका—कुमित्र पर विश्वास तो किसी प्रकारसे नहीं करना चाहिये और सुमित्र परभी विश्वास

न रक्खे इस कारण कि कदाचित् मित्र रुष्ट हो तो सब गुप्त बातों को प्रसिद्ध कर दे ॥ ६ ॥

मनसा चिन्तितं कार्य्यं वाचा नैव प्रकाशयेत् । मन्त्रेण रक्षयेद्गूढं कार्य्यं चापि नियोजयेत् ॥ ७ ॥

टीका—मनसे सोचे हुये काम का प्रकाश वचन से न करे किंतु मन्त्रणा से उस की रक्षा करै और गुप्त ही उस कार्य को काम में भी लावै ॥ ७ ॥

कष्टञ्च खलु मूर्खत्वं कष्टञ्च खलु यौवनम् । कष्टात्कष्टतरञ्चैव परगेहनिवासनम् ॥ ८ ॥

टीका—मूर्खता दुःख देती है और युवापन भी दुःख देता है परन्तु दूसरे के गृह में का वास तो बहुतही दुःखदायक होताहै ॥ ८ ॥

शैले शैले न माणिक्यं मौक्तिकं न गजे गजे । साधवो न हि सर्वत्र चन्दनं न वने वने ॥ ९ ॥

टीका—सब पर्वतों पर माणिक्य नहीं होता । और

मोती सब हाथियों में नहीं मिलता। साधु लोग सब स्थान में नहीं मिलते। सब वनमें चन्दन नहीं होता ॥ ९ ॥

पुत्राश्च विविधैः शीलैर्नियोज्याः सततं बुधैः । नीतिज्ञाः शीलसंपन्ना भवन्ति कुलपूजिताः ॥ १० ॥

टीका—बुद्धिमान् लोग लड़कों को नाना भांति की सुशीलता में लगावें इस कारण कि नीति जानने वाले यदि शीलवान् हों तो कुलमें पूजित होते हैं ॥ १० ॥

माता शत्रुः पिता वैरी येन बालो न पाठितः । न शोभते सभामध्ये हंसमध्ये बको यथा ॥ ११ ॥

टीका—वह माता शत्रु और पिता वैरी है जिस ने अपने बालक को न पढ़ाया इस कारण कि सभाके बीच वह नहीं शोभता जैसे हंसों के बीच बगुला ॥ ११ ॥

लालनाद्बहवो दोषास्ताडनाद्बहवो

गुणाः। तस्मात्पुत्रञ्च शिष्य ञ्चताडयेन्न तु लालयेत् ॥ १२ ॥

टीका—दुलारनेसे बहुत दोष होते हैं और द-ण्ड देने से बहुत गुण इस हेतु पुत्र और शिष्यको दण्ड देना उचित है ॥ १२ ॥

श्लोकेन वा तदर्द्धेन तदर्द्धार्द्धाक्षरेण वा। अवंध्यं दिवसं कुर्य्याद्दानाध्ययनकर्मभिः ॥ १३ ॥

टीका—श्लोक वा श्लोक के आधे को अथवा आधेमें से आधेको प्रतिदिन पढ़ना उचित है इस कारण कि दान अध्ययन आदि कर्म से दिनको सार्थक करना चाहिये ॥ १३ ॥

कान्तावियोगः स्वजनापमानो रणस्य शेषः कुनृपस्य सेवा। दरिद्रभावो विषमा सभा च विनाग्निमेते प्रदहन्ति कायम् ॥ १४ ॥

टीका—स्त्रीका विरह, अपने जनों से अनादर, यु-द्ध करके बचा शत्रु, कुत्सित राजाकी सेवा, दरिद्रता

और अविवेकियों की सभा ये विना आगही श-
रीरको जलाते हैं ॥ १४ ॥

नदीतीरे च ये वृक्षाः परगेहेषु कामिनी। मंत्रिहीनाश्च राजानः शीघ्रंनश्यन्त्यसंश-
यम् ॥ १५ ॥

टीका—नदीके तीरके वृक्ष, दूसरे के गृहमें जाने
वाली स्त्री, मन्त्री रहित राजा, निश्चय है कि शीघ्र
ही नष्ट होजाते हैं ॥ १५ ॥

बलं विद्या च विप्राणां राज्ञां सैन्य-
बलं तथा। बलं वित्तञ्च वैश्यानां शूद्राणां
परिचर्यिका ॥ १६ ॥

टीका—ब्रह्मणों का बल विद्या है वैसे ही राजा का
बल सेना वैश्यों का बल धन और शूद्रों का बल
सेवा है १६॥

निर्द्धनं पुरुषं वेश्या प्रजा भग्नं नृपं
त्यजेत्। खगा वीतफलं वृक्षं भुक्त्वा चा-
भ्यागतो गृहम् ॥१७ ॥

टीका—वेश्या निर्द्धन पुरुषको, प्रजा शक्तिहीन रा-

जाको, पत्नी फलरहित वृक्षको और अभ्यागत भोजन करके घरको छोड देते हैं ॥ १७ ॥

गृहीत्वा दक्षिणां विप्रास्त्यजन्ति यजमानकम् । प्राप्तविद्या गुरुं शिष्या दग्धारण्यं मृगास्तथा ॥ १८ ॥

टीका—ब्राह्मण दक्षिणा लेकर यजमानको त्याग देते हैं । शिष्य विद्या प्राप्त होजाने पर गुरु को वैसे ही जलेहुये बनको मृग छोड देते हैं ॥ १८ ॥

दुराचारी दुराद्दृष्टिर्दुरावासी च दुर्जनः । यन्मैत्री क्रियते पुम्भिर्नरः शीघ्रं विनश्यति ॥ १९ ॥

टीका—जिसका आचरण बुरा है जिसकी दृष्टि पाप में रहती हैं । बुरे स्थान में बसनेवाला और दुर्जन इन पुरुषोंकी मैत्री जिसके साथ की जाती है वह नर शीघ्रही नष्ट होजाता है ॥ १९ ॥

समाने शोभते प्रीती राज्ञि सेवा च शोभते । वाणिज्यं व्यवहारेषु स्त्री दिव्या शोभते गृहे ॥ २० ॥

टीका—समान जनमें प्रीति शोभती है। और सेवा राजाकी शोभतीहै। व्यवहारों में बनिआई और घरमें दिव्य स्त्री शोभती है ॥ २० ॥

इति द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

कस्य दोषः कुले नास्ति व्याधिना के न पीडिताः । व्यसनं केन न प्राप्तं कस्य सौख्यं निरन्तरम् ॥ १ ॥

टीका—किसके कुलमें दोष नहीं है व्याधिने किसे पीड़ित न किया किसको दुःख न मिलाके किस को सदा सुखही रहा ॥ १ ॥

आचारः कुलमाख्याति देशमाख्याति भाषणम् । संभ्रमः स्नेहमाख्याति वपुराख्याति भोजनम् ॥ २ ॥

टीका—आचार कुलको बतलाता है। बोली देश को जनाती है। आदर प्रीतिको प्रकाश करता है। शरीर भोजन को जताता है ॥ २ ॥

सुकुले योजयेत्कन्यां पुत्रं विद्यासु योजयेत् । व्यसने योजयेच्छत्रुं मित्रं धर्मेण योजयेत् ॥ ३ ॥

टीका—कन्य को श्रेष्ठ कुलवालेको देना चाहिये। पुत्र को विद्या में लगाना चाहिये शत्रुको दुःख पंहुचाना उचित है। और मित्रको धर्म का उपदेश करना चाहिये ॥ ३ ॥

दुर्जनस्य च सर्पस्य वरं सर्पो न दुर्जनः । सर्पो दशति काले तु दुर्जनस्तु पदे पदे॥४॥

टीका—दुर्जन और सर्प इनमें सांप अच्छा दुर्जन नहीं, इस कारण कि सांप काल आने पर काटता है खल तो पद पद में ॥ ४ ॥

एतदर्थं कुलीनानां नृपाः कुर्वंति संग्रहम् । आदिमध्यावसानेषु न त्यजंति च ते नृपम् ॥ ५ ॥

टीका—राजा लोग कुलीनों का संग्रह इस निमित्त करते हैं कि वे आदि अर्थात् उन्नति मध्य अर्थात् साधारण और अन्त अर्थात् विपत्ति में राजा को नहीं छोड़ते ॥ ५ ॥

प्रलये भिन्नमर्यादा भवंति किल सागराः । सागरा भेदमिच्छन्ति प्रलयेऽपि न साधवः ॥ ६ ॥

टीका—समुद्र प्रलयके समयमें अपनी मर्य्यादा को छोडदेते हैं और सागर भेदकी इच्छाभी रखते हैं परन्तु साधुलोग प्रलय होने पर भी अपनी मर्यादाको नहीं छोडते ॥ ६ ॥

मूर्खस्तु परिहर्त्तव्यः प्रत्यक्षो द्विपदः पशुः । भिद्यते वाक्यशल्येन अदृशं कंटकं यथा ॥ ७ ॥

टीका—मूर्खको दूर करना उचित है इस कारण कि देखनेमें वह मनुष्य है परन्तु यथार्थ पशु है औरवाक्य रूप कांटे को बेधताहै जैसे अन्धे को कांटा ॥ ७ ॥

रूपयौवनसम्पन्ना विशालकुलसम्भवाः । विद्याहीना न शोभंते निर्गन्धा इव किंशुकाः ॥ ८ ॥

टीका—सुन्दरता, तरुणता और बड़े कुलमें जन्म इनके रहते भी विद्याहीन बिना गंध पलाशके फूलके समान नही शोभते ॥ ८ ॥

कोकिलानां स्वरो रूपं नारी रूपं पतिव्रतम् । विद्या रूपं कुरूपाणां क्षमा रूपं तपस्विनाम् ॥ ९ ॥

टीका—कोकिलोंकी शोभा स्वर है। स्त्रियों की शोभा पतिव्रत। कुरूपोंकी शोभा विद्याहै। तपस्वियोंकी शोभा क्षमा है ॥ ९ ॥

त्यजेदेकं कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत् । ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत् ॥ १० ॥

टीका—कुल के निमित्त एक को छोड देना चाहिये। ग्राम के हेतु कुल का त्याग करना उचित है। देश के अर्थ ग्रामका और अपनेअर्थ पृथिवी का अर्थात् सब का त्यागही उचित है ॥ १० ॥

उद्योगे नास्ति दारिद्र्यं जपतो नास्ति पातकम् । मौनेन कलहो नास्ति नास्ति जागरिते भयम् ॥ ११ ॥

टीका—उपाय करने पर दरिद्रता नहीं रहती। जपने वालेको पाप नहीं रहता। मौन होनेसे कलह नही होता। जागनेवाले के निकट भय नहीं आता ॥ ११ ॥

अतिरूपेण वै सीता अतिगर्वेण रावणः । अतिदानाद्बलिर्बद्धो ह्यति सर्वत्र वर्जयेत् ॥ १२ ॥

टीका—अति सुन्दरता के कारण सीता हरी गई। अतिगर्व से रावण मारा गया। बहुत दान देकर बलि को बँधना पड़ा। इस हेतु अति को सब स्थलमें छोड़ देना चाहिये ॥ १२ ॥

को हि भारः समर्थानां किं दूरं व्यवसायिनाम् । को विदेशः सुविद्यानां कः प्रियः प्रियवादिनाम् ॥ १३ ॥

टीका—समर्थको कौन वस्तु भारी है। काममें तत्पर रहनेवालेको क्या दूर है। सुन्दर विद्यावालोंको कौन विदेश है। प्रियवादियों से प्रिय कौन है ॥ १३ ॥

एकेनापि सुवृक्षेण पुष्पितेन सुगन्धिना । वासितं तद्वनं सर्वं सुपुत्रेण कुलं यथा ॥ १४ ॥

टीका—एक भी अच्छे वृक्ष से जिस में सुन्दर फूल

और गंध है उस से सब वन सुवासित हो जाता है जैसे सुपुत्र से कुल ॥ १४ ॥

एकेन शुष्कवृक्षेण दह्यमानेन वह्निना ।
दह्यते तद्वनं सर्वं कुपुत्रेण कुलं यथा ॥१५॥

टीका—आगसे जलते हुए एकही सूखे वृक्षसे वह सब वन जल जाता है जैसे कुपुत्र से कुल ।

एकेनापि सुपुत्रेण विद्यायुक्तेन साधुना ।
आह्लादितं कुलं सर्वं ~~कुपुत्रेण कुलं यथा~~ ॥ १६ ॥ यथा चन्द्रेण शर्वरी

टीका—विद्यायुक्त भला एक भी सुपुत्र हो उस से सर्व कुल आनंदित हो जाता है । जैसे चन्द्रमा से रात्रि ॥ १६ ॥

किं जातैर्बहुभिः पुत्रैः शोकसन्तापकारकैः । वरमेकः कुलालम्बी यत्र विश्राम्यते कुलम् ॥ १७ ॥

टीका—शोक सन्ताप करनेवाले उत्पन्न बहुत पुत्रों से क्या । कुल को सहारा देनेवाला एकही पुत्र श्रेष्ठ है जिस में कुल विश्राम पाता है ॥ १७ ॥

लालयेत्पञ्च वर्षाणि दशवर्षाणि ताडयेत्। प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रे मित्रत्वमाचरेत् ॥ १८ ॥

टीका—पुत्र को पांच वर्ष तक दुलारे उपरांत दस वर्ष पर्य्यंत ताडन करे सोलहवें वर्ष के प्राप्त होने पर पुत्र से मित्र समान आचरण करे ॥ १८ ॥

उपसर्गेऽन्यचक्रे च दुर्भिक्षे च भयावहे। असाधुजनसंपर्के यः पलाति स जीवति १९

टीका—उपद्रव उठने पर, शत्रु के आक्रमण करने पर, भयानक अकाल पडने पर और खल जन के संग होने पर जो भागता है वह जीवता रहता है ॥ १९ ॥

धर्मार्थकाममोक्षेषु यस्य कोऽपि न विद्यते। जन्मजन्मानि मर्त्येषु मरणं तस्य केवलम् ॥ २० ॥

टीका—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इनमें से जिस को कोई न भया उसको मनुष्यों में जन्म होनेका फल केवल मरण ही हुआ ॥ २० ॥

मूर्खा यत्र न पूज्यन्ते धान्यं यत्र सुसञ्चितम्। दाम्पत्यकलहो नास्ति तत्र श्रीः स्वयमागता ॥ २१ ॥

टीका— जहां मूर्ख नहीं पूजे जाते, जहां अन्न सञ्चित रहता है और जहां स्त्री पुरुष में कलह नहीं होता वहां आपही लक्ष्मी विराजमान रहती है ॥ २१ ॥

इति तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

आयुः कर्म च वित्तञ्च विद्या निधनमेव च। पञ्चैतानि हि सृज्यन्ते गर्भस्थस्यैव देहिनः ॥ १ ॥

टीका—यह निश्चय है कि आयुर्दाय, कर्म, धन, विद्या और मरण ये पांचों जब जीव गर्भही में रहता है लिख दिये जाते हैं ॥ १ ॥

साधुभ्यस्ते निवर्तन्ते पुत्रमित्राणि बान्धवाः। ये च तैः सह गन्तारस्तद्धर्मात्सुकुलम् ॥ २ ॥

टीका—पुत्र, मित्र, बन्धु, ये साधुजनों से निवृत्त होजाते हैं। और जो उन का संग करते हैं उनके पुण्य से उनका कुल सुकृती होजाता है ॥ २॥

दर्शनध्यानसंस्पर्शैर्मत्सी कूर्मी च पक्षिणी। शिशुं पालयते नित्यं तथा सज्जनसङ्गतिः ॥ ३॥

टीका—मछली, कछुई और पक्षी ये दर्शन, ध्यान और स्पर्श से जैसे बच्चों को सर्वदा पालते हैं वैसे ही सज्जनों की संगति ॥ ३ ॥

यावत्स्वस्थो ह्ययं देहो यावन्मृत्युश्च दूरतः। तावदात्महितं कुर्यात्प्राणान्ते किं करिष्यति ॥ ४ ॥

टीका—जब लौं देह नीरोग है। और जब लग मृत्यु दूर है। तत्पर्यंत अपना हित पुण्यादि करना उचित है। प्राण के अन्त हो जाने पर कोई क्या करैगा ॥ ४॥

कामधेनुगुणा विद्या ह्यकाले फलदायिनी। प्रवासे मातृसदृशी विद्या गुप्तं धनं स्मृतम् ॥ ५ ॥

टीका—विद्या में कामधेनु के समान गुण हैं इस कारण कि अकाल में भी फल देतीहै। विदेश में माता के समान है। विद्या को गुप्त धन कहते हैं ॥ ५ ॥

एकोऽपि गुणवान्पुत्रो निर्गुणैश्च शतैर्वरः। एकश्चन्द्रस्तमो हन्ति न च ताराः सहस्रशः॥ ६ ॥

टीका—एकभी गुणी पुत्र श्रेष्ठ है सो सैकडों गुणरहितों से क्या। एकही चन्द्र अन्धकारको नष्ट करदेता है सहस्रतारे नहीं ॥ ६ ॥

मूर्खश्चिरायुर्जातोऽपि तस्माज्जातमृतो वरः। मृतः स चाल्पदुःखाय यावज्जीवं जडो दहेत् ॥ ७ ॥

टीका—मूर्ख जातक चिरजीवी भी हो उसे उत्पन्न होतेही जो मरगया वह श्रेष्ठ है। इसकारण कि मरा थोड़ेही दुःखका कारण होता है। जड़ जबलों जीताहै डाहता रहता है ॥ ७ ॥

कुग्रामवासः कुलहीनसेवा कुभोजनं क्रोधमुखी च भार्या। पुत्रश्च मूर्खो वि-

धवा च कन्या विनाग्निना षट् प्रदह-
न्ति कायम् ॥८ ॥

टीका—कुग्राममें वास, नीच कुल की सेवा, कुभो-
जन, कलही स्त्री, मूर्ख पुत्र, विधवा कन्या ये छः
बिना आगही शरीर को जलातेहैं ॥ ८ ॥

किं तया क्रियते धेन्वा या न दोग्ध्री
न गुर्विणी । कोऽर्थः पुत्रेण जातेन यो
न विद्वान्न भक्तिमान् ॥ ९ ॥

टीका—उस गायसे क्या लाभहै । जो न दूध देवै न
गाभिन होवै । और ऐसे पुत्र हुये क्या लाभ जो न
विद्वान् भया न भक्तिमान् ॥ ९ ॥

संसारतापदग्धानां त्रयो विश्रान्ति-
हेतवः । अपत्यञ्च कलत्रञ्च सतां सङ्ग-
तिरेव च ॥ १० ॥

टीका—संसार ताप से जलते हुये पुरुषों के वि-
श्राम के हेतु तीन हैं लडका, स्त्री और सज्जनों
की संगति ॥ १० ॥

सकृज्जल्पन्ति राजानःसकृज्जल्पन्ति,

परिडताः। सकृत्कन्याः प्रदीयन्ते त्रीरायेतानि सकृत्सकृत् ॥ ११ ॥

टीका—राजालोग एक ही बार आज्ञा देते हैं। परिडत लोग एक ही बार बोलते हैं। कन्या का दान एक ही बार होता है। ये तीनों बात एक बार ही होती हैं ॥ ११

एकाकिना तपो द्वाभ्यां पठनं गायनं त्रिभिः। चतुर्भिर्गमनं क्षेत्रं पञ्चभिर्बहुभी रणम् ॥ १२ ॥

टीका—अकेलेसे तप, दोसे पढ़ना, तीनसे गाना, चारसे पंथ में चलना, पांच से खेती और बहुत से युद्ध भली भांति से बनते हैं ॥ १२ ॥

सा भार्या या शुचिर्दक्षा सा भार्या या पतिव्रता। सा भार्या या पतिप्रीता सा भार्या सत्यवादिनी ॥ १३ ॥

टीका—वही भार्य्या है जो पवित्र और चतुर, वही भार्य्या है जो पतिव्रता है, वही भार्य्या है जिसपर पतिकी प्रीति है, वही भार्य्या है जो सत्य बो-

लती है अर्थात् दान, मान, पोषण, पालन के यो-
ग्य है ॥ १३ ॥

अपुत्रस्य गृहं शून्यं दिशः शून्यास्त्व
बान्धवाः । मूर्खस्य हृदयं शून्यं सर्वशून्या
दरिद्रता ॥ १४ ॥

टीका—निपुत्री का घर सूना है । बन्धु रहित
दिशा शून्य है । मूर्ख का हृदय शून्य है । और सर्व
शून्य दरिद्रता है ॥ १४ ॥

अनभ्यासे विषं शास्त्रमजीर्णे भोजनं
विषम् । दरिद्रस्य विषं गोष्ठी वृद्धस्य
तरुणी विषम् ॥ १५ ॥

टीका—बिना अभ्यास से शास्त्र विष हो जाता है ।
बिना पचे भोजन विष हो जाता है । दरिद्र को गो-
ष्ठी विष और वृद्धको युवती विष जान पडती
है ॥ १५ ॥

त्यजेद्धर्मं दयाहीनं विद्याहीनं गुरुं त्यजेत् ।
त्यजेत्क्रोधमुखीं भार्यां निस्नेहान्बान्धवां-
स्त्यजेत् ॥ १६ ॥

टीका—दया रहित धर्मको छोडदेना चाहिये। विद्याहीन गुरुका त्याग उचित है। जिस के मुँह से क्रोध प्रगट होताहो ऐसी भार्य्या को अलग करना चाहिये। और बिना प्रीति बांधवों का त्याग विहित है ॥१६॥

अध्वा जरा मनुष्याणां वाजिनां बन्धनं जरा। अमैथुनं जरा स्त्रीणां वस्त्राणामातपो जरा ॥ १७ ॥

टीका—मनुष्यों का पथ बुढ़ापा है। घोड़ों को बांधरखना वृद्धता है। स्त्रियों को अमैथुन बुढ़ापा है। वस्त्रों को घाम वृद्धता है ॥ १७ ॥

कः कालः कानि मित्राणि को देशः को व्ययागमौ। कस्याहं का च मे शक्तिरिति चिन्त्यं मुहुर्मुहुः ॥ १८ ॥

टीका—किस काल में क्या करना चाहिये। मित्र कौन है यह सोचना चाहिये। इसी भांति देश कौन है इस पर ध्यान देना चाहिये। लाभ व्यय क्या है यह भी जानना चाहिये। इसीभांति किसका मैं हूं

यह देखना चाहिये । इसी प्रकारसे मुझमें क्या शक्ति है यह वारंवार विचारना योग्य है ॥ १८ ॥

अग्निर्देवो द्विजातीनां मुनीनां हृदि दैवतम् । प्रतिमा स्वल्पबुद्धीनां सर्वत्र समदर्शिनाम् ॥ १९ ॥

टीका—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इनका देवता अग्नि है । मुनियों के हृदय में देवता रहता है । अल्पबुद्धियोंको मूर्ति और समदर्शियोंको सब स्थान में देवता है ॥ १९ ॥

इति चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पतिरेव गुरुः स्त्रीणां सर्वस्याभ्यागतो गुरुः । गुरुरग्निर्द्विजातीनां वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः ॥ १ ॥

टीका—स्त्रियोंका गुरु पतिही है । अभ्यागत सबका गुरु है । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यका गुरु अग्नि है । और चारों वर्णोंका गुरु ब्राह्मण है ॥ १ ॥

यथा चतुर्भिः कनकं परीक्ष्यते निघर्षणच्छेदनतापताडनैः । तथा चतुर्भिःपुरुषःपरीक्ष्यते त्यागेन शीलेन गुणेन कर्मणा ॥ २ ॥

टीका—घिसना, काटना, तपाना, पीटना इन चार प्रकारों से जैसे सोनाकी परीक्षा की जाती है वैसेही दान, शील, गुण, आचार इन चारों प्रकारसे पुरुषकीभी परीक्षा कीजातीहै ॥ २ ॥

तावद्भयेषु भेतव्यं यावद्भयमनागतम्। आगतं तु भयंदृष्ट्वा प्रहर्तव्यमशङ्कया ३

टीका—तब तकही भयोंसे डरना चाहिये जब तक भय नहीं आया और आये हुये भयको देख कर प्रहार करना उचित है ॥ ३ ॥

एकोदरसमुद्भूता एकनक्षत्रजातकाः । न भवन्ति समाः शीले यथाबदरिकण्टकाः ॥ ४ ॥

टीका—एकही गर्भ से उत्पन्न और एकही नक्षत्र में जायमान शील में समान नहीं होते जैसे बेर और उसके कांटे ॥ ४ ॥

निःस्पृहो नाधिकारी स्यान्नाकामो मण्डनप्रियः । नाविदग्धः प्रियं ब्रूयात् स्पष्टवक्ता न वञ्चकः ॥ ५ ॥

टीका—जिसको किसी विषयकी वाञ्छा न होगी वह किसी विषयका अधिकारी नहीं होगा। जो कामी न होगा वह शरीरकी शोभा करनेवाली वस्तुओंमें प्रीति नहीं रक्खेगा। जो चतुर न होगा वह प्रिय नहीं बोलसकेगा और स्पष्ट कहनेवाला छली नहीं होगा ॥ ५ ॥

मूर्खाणां पण्डिता द्वेष्या अधनानां महाधनाः। परांगनाः कुलस्त्रीणां सुभगानां च दुर्भगाः ॥ ६ ॥

टीका—मूर्ख पण्डितों से, दरिद्री धनियों से, व्यभिचारिणी कुलस्त्रियों से और विधवा सुहागिनियों से बुरा मानती हैं ॥ ६ ॥

आलस्योपगता विद्या परहस्ते गतं धनम्। अल्पबीजं हतं क्षेत्रं हतं सैन्यमनायकम् ॥ ७ ॥

टीका—आलस्यसे विद्या नष्ट होजातीहै। दूसरेके हाथमें जानेसे धन निरर्थक होजाताहै। बीजकी न्यूनतासे खेत हत होता है। सेनापतिके बिना सेना मारी जाती है॥ ७॥

अभ्यासाद्धार्यते विद्या कुलं शीलेन धार्यते। गुणेन ज्ञायते त्वार्यः कोपो नेत्रेण गम्यते॥ ८॥

टीका—अभ्याससे विद्या, सुशीलतासे कुल, गुण से भला मनुष्य और नेत्रसे कोप ज्ञात होताहै॥ ८॥

वित्तेन रक्ष्यते धर्मो विद्या योगेन रक्ष्यते। मृदुना रक्ष्यते भूपः सत्स्त्रिया रक्ष्यते गृहम्॥ ९॥

टीका—धनसे धर्मकी रक्षा होतीहै। यम नियम आदि योगसे ज्ञान रक्षित रहताहै। मृदुतासे राजा की रक्षा होती है। भली स्त्रीसे घरकी रक्षा होती है॥ ९॥

अन्यथा वेदपाण्डित्यं शास्त्रमाचारमन्यथा। अन्यथा वदनाः शान्तं लोकाः क्लिश्यन्ति चान्यथा॥ १०॥

टीका—वेदके पाण्डित्य को व्यर्थ प्रकाश करनेवाला, शास्त्र और उसके आचारके विषयमें व्यर्थ विवादकरनेवाला शान्तपुरुषको अन्यथा कहनेवाला ये लोग व्यर्थही क्लेश उठाते हैं ॥ १० ॥

दारिद्र्यनाशनं दानं शीलं दुर्गतिनाशनम् । अज्ञाननाशिनी प्रज्ञा भावना भयनाशिनी ॥ ११ ॥

टीका—दान दरिद्रताका नाश करताहै । सुशीलता दुर्गतिको दूर कर देती है । बुद्धि अज्ञान का नाश कर देती है । भक्ति भय का नाश करती है ॥ ११ ॥

नास्ति कामसमो व्याधिर्नास्ति मोहसमो रिपुः । नास्ति कोपसमो वन्हिर्नास्ति ज्ञानात्परं सुखम् ॥ १२ ॥

टीका—काम के समान दूसरी व्याधि नहीं है । अज्ञान के समान दूसरा वैरी नहीं है । क्रोधके तुल्य दूसरी आग नहीं है । ज्ञानसे परे सुख नहीं है ॥१२॥

जन्ममृत्यू हि यात्येको भुनक्त्येकः शुभाशुभम् । नरकेषु पतत्येक एको याति परां गतिम् ॥ १३ ॥

टीका—यह निश्चय है कि एकही पुरुष जन्म मरण पाताहै, सुख दुख एक ही भोगताहै, एकही नरकोंमें पडताहै, और एकही मोक्ष पाताहै अर्थात् इन कामों में कोई किसी की सहायता नहीं कर सक्ता ॥ १३ ॥

तृणं ब्रह्मविदः स्वर्गस्तृणं शूरस्य जीवितम् । जिताक्षस्य तृणं नारी निस्पृहस्य तृणं जगत् ॥ १४ ॥

टीका—ब्रह्मज्ञानी को स्वर्ग तृण है। शूरको जीवन तृण है। जिसने इन्द्रियों को वशकिया उसे स्त्री तृण के तुल्य जानपडतीहै, निस्पृहको जगत् तृणहै ॥१४॥

विद्या मित्रं प्रवासेषु भार्या मित्रं गृहेषु च । व्याधितस्यौषधं मित्रं धर्मो मित्रं मृतस्य च ॥

टीका—विदेशमें विद्या मित्र होतीहै, गृहमें भार्या मित्रहै, रोगीका मित्र औषध है और मरेका मित्र धर्म है ॥ १५ ॥

वृथा वृष्टिः समुद्रेषु वृथा तृप्तेषु भोज-

नम् । वृथा दानं धनाढ्येषु वृथा दीपो दिवापि च ॥ १६ ॥

टीका—समुद्रों में वर्षा वृथा है और भोजन से तृप्त को भोजन निरर्थक है, धन धनीको देना व्यर्थ है और दिन में दीप वृथा है ॥ १६ ॥

नास्ति मेघसमं तोयं नास्ति चात्मसमं बलम् । नास्ति चक्षुःसमं तेजो नास्ति धान्यसमं प्रियम् ॥ १७ ॥

टीका—मेघके जलके समान दूसरा जल नहीं होता । अपने बलके समान दूसरेका बल नहीं, इसकारण कि समय पर काम आताहै । नेत्रके तुल्य दूसरा प्रकाश करनेवाला नहीं है । और अन्नके सदृश दूसरा प्रिय पदार्थ नहीं है ॥ १७ ॥

अधना धनमिच्छन्ति वाचश्चैव चतुष्पदाः । मानवाः स्वर्गमिच्छन्ति मोक्षमिच्छन्ति देवताः ॥ १८ ॥

टीका—धनहीन धन चाहते हैं । और पशु वचन, मनुष्य स्वर्ग चाहतेहैं । और देवता मुक्तिकी इच्छा रखतेहैं ॥ १८ ॥

सत्येन धार्यते पृथ्वी सत्येन तपते रविः । सत्येन वाति वायुश्च सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम् ॥ १९ ॥

टीका—सत्यसे पृथ्वी स्थिर है । और सत्यही से सूर्य तपता है । सत्यही से वायु बहती है । सब सत्यही में स्थिर है ॥ १९ ॥

चला लक्ष्मीश्चलाः प्राणाश्चले जीवितमन्दिरे ॥ चलाचले च संसारे धर्म एको हि निश्चलः ॥ २० ॥

टीका—लक्ष्मी नित्य नहीं है । प्राण जीवन, और घर ये सब स्थिर नहीं । निश्चयहै कि इस चरअचर संसार में केवल धर्महीं निश्चल है ॥ २० ॥

नराणां नापितो धूर्तः पक्षिणाश्चैव वायसः । चतुष्पदां शृगालस्तु स्त्रीणां धूर्ता च मालिनी ॥ २१ ॥

टीका—पुरुषोंमें नापित और पक्षियों में कौवा वंचक होताहै । पशुओं में सियार वंचक होताहै और स्त्रियोंमें मालिन धूर्त होती है ॥ २१ ॥

जनिता चोपनेता च यस्तु विद्यां प्रयच्छति ॥ अन्नदाता भयत्राता पञ्चैते पितरः स्मृताः ॥ २२ ॥

टीका—जन्मानेवाला, यज्ञोपवीत आदि संस्कार करानेवाला, जो विद्या देता है, अन्नदेनेवाला, भयसे बचानेवाला ये पांच पिता गिने जाते हैं ॥ २२ ॥

राजपत्नी गुरोः पत्नी मित्रपत्नी तथैव च । पत्नीमाता स्वमाता च पञ्चैते मातरः स्मृताः ॥ २३ ॥

टीका—राजा की भार्या, गुरुकी स्त्री, वैसेही मित्र की पत्नी, सासु और अपनी जननी इन पांचों को माता कहते हैं ॥ २३ ॥

इति पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

श्रुत्वा धर्मं विजानाति श्रुत्वा त्यजति दुर्मतिम् । श्रुत्वा ज्ञानमवाप्नोति श्रुत्वा मोक्षमवाप्नुयात् ॥ १ ॥

टीका—मनुष्य शास्त्रको सुनकर धर्मको जानता है और सुनकर दुर्बुद्धि को छोडताहै । सुनकर ज्ञान पाता है और सुनकर मोक्ष पाताहै ॥ १ ॥

पक्षिणां काकचाण्डालः पशूनाञ्चैव कुक्कुटः । मुनीनां पापचाण्डालः सर्वश्चाण्डालनिन्दकः ॥ २ ॥

टीका—पक्षियों में कौवा और पशुओं में कुक्कुट चांडाल होताहै। मुनियों में चांडाल पाप है। सब में चांडाल निन्दक है ॥ २ ॥

भस्मना शुध्यते कांस्यं ताम्रमम्लेन शुध्यति ॥ रजसा शुध्यते नारी नदी वेगेन शुध्यति ॥ ३ ॥

टीका—कांसेका पात्र राखसे शुद्ध होताहै। तांबेका मल खटाई से जाताहै । स्त्री रजस्वला होनेपर शुद्ध होजाती है । और नदी धाराके वेगसे पवित्र होती है ॥ ३ ॥

भ्रमन्संपूज्यते राजा भ्रमन्संपूज्यते द्विजः । भ्रमन्संपूज्यते योगी स्त्री भ्रमन्ती विनश्यति ॥ ४ ॥

टीका—भ्रमण करनेवाला राजा आदर पाता है, घूमनेवाला ब्राह्मण पूजा जाता है, भ्रमण करने वाला योगी पूजित होता है, परन्तु स्त्री घूमने से भ्रष्ट होजाती है ॥ ४ ॥

यस्यार्थास्तस्य मित्राणि यस्यार्थास्तस्य बांधवाः । यस्यार्थाः स पुमाल्लोँके यस्यार्थाः स च पण्डितः ॥ ५ ॥

टीका—जिसके धन रहता है उसीका मित्र और जिसके सम्पत्ति उसीके बांधव होते हैं। जिसके धन रहता है वही पुरुष गिना जाताहै और जिसके धन होताहै वही पण्डित कहाताहै ॥ ५ ॥

तादृशी जायते बुद्धिर्व्यवसायोपि तादृशः । सहायास्तादृशा एव यादृशी भवितव्यता ॥ ६ ॥

टीका—वैसीही बुद्धि और वैसाही उपाय होताहै और वैसेही सहायक मिलते हैं जैसा होनहार है ६

कालः पचति भूतानि कालः संहरते प्रजाः ॥ कालः सुप्तेषु जागर्ति कालो हि दुरतिक्रमः ॥ ७ ॥

टीका—काल सब प्राणियोंको खाजाताहै और कालही सब प्रजाका नाशकरताहै । सब पदार्थ के लय होजाने पर काल जागतारहता है। कालको कोई नहीं टालसक्ता ॥ ७ ॥

न पश्यति च जन्मान्धः कामान्धो नैव पश्यति ॥ मदोन्मत्ता न पश्यन्ति चार्थी दोषं न पश्यति ॥ ८ ॥

टीका—जन्मका अन्धा नहीं देखता कामसे जो अंधा होरहा है उसको सूझता नहीं, मदोन्मत्त किसी को देखता नहीं और अर्थी दोषको नहीं देखता ॥८॥

स्वयं कर्म करोत्यात्मा स्वयं तत्फल-मश्नुते ॥ स्वयं भ्रमति संसारे स्वयं त-स्माद्विमुच्यते ॥ ६ ॥

टीका—जीव आपही कर्म करताहै और उसका फलभी आपहीभोगताहै, आपही संसारमें भ्रमताहै और आपही उससे मुक्तभी होजाताहै ॥ ६ ॥

राजा राष्ट्रकृतं पापं राज्ञः पापं पुरो-हितः ॥ भर्त्ता च स्त्रीकृतं पापं शिष्य-पापं गुरुस्तथा ॥ १ ॥

टीका—अपने राज्यमें कियेहुये पापको राजा और राजाके पापको पुरोहित भोगताहै, स्त्रीकृत पापको स्वामी भोगताहै वैसेही शिष्य के पाप को गुरु ॥ १० ॥

ऋणकर्ता पिता शत्रुर्माता च व्यभिचारिणी ॥ भार्या रूपवती शत्रुः पुत्रः शत्रुरपण्डितः ॥ ११ ॥

टीका—ऋणकरनेवाला पिता शत्रु है, व्यभिचारिणी माता और सुन्दरी स्त्री शत्रुहै और मूर्ख पुत्र वैरी है ॥ ११ ॥

लुब्धमर्थेन गृह्णीयात् स्तब्धमंजलिकर्मणा ॥ मूर्खं छन्दानुवृत्त्या च यथार्थत्वेन पण्डितम् ॥ १२ ॥

टीका—लोभीको धनसे, अहंकारी को हाथ जोडनेसे, मूर्खको उसके अनुसार वर्तनेसे और पण्डितको सचाईसे, वशकरना चाहिये ॥ १२ ॥

वरं न राज्यं न कुराजराज्यं वरं न मित्रं न कुमित्रमित्रम् । वरं न शिष्यो न

कुशिष्यशिष्यो वरं न दारा न कुदारदारः ॥ १३ ॥

टीका—राज्य न रहना यह अच्छा परन्तु कुराजाका राज्य होना यह अच्छा नहीं, मित्रका न होना यह अच्छा पर कुमित्रको मित्र करना अच्छा नहीं, शिष्य न हो यह अच्छा पर निन्दित शिष्य शिष्य कहलावै यह अच्छा नहीं, भार्या न रहै यह अच्छा पर कुभार्या का भार्या होना अच्छा नहीं ॥ १३ ॥

कुराजराज्येन कुतः प्रजासुखं कुमित्रमित्रेण कुतोऽभिनिर्वृतिः ॥ कुदारदारैश्च कुतो गृहे रतिः कुशिष्यमध्यापयतः कुतो यशः ॥ १४ ॥

टीका—दुष्ट राजा के राज्य में प्रजाको सुख कैसे होसक्ताहै, कुमित्र मित्रसे आनन्द कैसे होसक्ताहै, दुष्ट स्त्रीसे गृहमें प्रीति कैसे होगी और कुशिष्यको पढ़ानेवाले की कीर्ति कैसे होगी ॥ १४ ॥

सिंहादेकं बकादेकं शिक्षेच्चत्वारि कुक्कु-

टात् ॥ वायसात्पञ्च शिक्षेच्च षट् शुनस्त्री-
णि गर्दभात् ॥ १५ ॥

टीका—सिंहसे एक, बकुलेसे एक और कुक्कुटसे चार बातें सीखनी चाहिये । कौवेसे पांच, कुत्तेसे छः और गदहेसे तीन गुण सीखने उचित हैं ॥ १५ ॥

प्रभूतं कार्यमल्पं वा तं नरः कर्त्तुमि-
च्छति ॥ सर्वारम्भेण तत्कार्यं सिंहादेकं
प्रचक्षते ॥ १६ ॥

टीका—कार्य्य छोटा हो वा बडा, जो करणीय हो उसको सब प्रकारके प्रयत्नसे करना उचित है । इसे सिंहसे एक सीखना कहतेहैं ॥ १६ ॥

इन्द्रियाणि च संयम्य बकवत्पण्डितो
नरः ॥ देशकालबलं ज्ञात्वा सर्वकार्याणि
साधयेत् ॥ १७ ॥

टीका—विद्वान् पुरुषको चाहिये कि इन्द्रियोंका संयम करके देश, काल और बलको समझकर बकुलाके समान सब कार्यको साधे ॥ १७ ॥

प्रत्युत्थानञ्च युद्धञ्च संविभागञ्च ब-
न्धुषु ॥ स्वयमाक्रम्य भुक्तञ्च शिक्षेच्चत्वा-
रि कुक्कुटात् ॥ १८ ॥

टीका—उचित समयमें जागना, रणमें उद्यत रहना और बन्धुओंको उनका भाग देना और आप आक्रमण करके भोजन करे, इन चार बातोंको कुक्कुट से सीखना चाहिये ॥ १८ ॥

गूढमैथुनचारित्वं काले काले च संग्र-
हम् ॥ अप्रमत्तमविश्वासं पंच शिक्षेच्च
वायसात् ॥ १९ ॥

टीका—छिपकर मैथुन करना, समय२पर संग्रह करना, सावधान रहना और किसीपर विश्वास न करना इन पांचोंको कौवेसे सीखना उचित है॥१९॥

बह्वाशीस्वल्पसन्तुष्टः सनिद्रो लघुचेत-
नः ॥ स्वामिभक्तश्च शूरश्च षडेते श्वा-
नतो गुणाः ॥ २० ॥

टीका—बहुत खानेकी शक्ति रहतेभी थोडेहीसे संतुष्टहोना, गाढ़ निद्रा रहते भी झटपट जागना,

स्वामीकी भक्ति और शूरता इन छः गुणोंको कू-
कुर से सीखना चाहिये ॥ २० ॥

सुश्रान्तोऽपि वहेद्भारं शीतोष्णं न च पश्यति ॥ संतुष्टश्चरते नित्यं, त्रीणि शिक्षेच्च गर्दभात् ॥ २१ ॥

टीका—अत्यन्त थक जाने पर भी बोझाको ढो-
ते जाना, शीत और उष्ण पर दृष्टि न देना, सदा
सन्तुष्ट होकर विचरना इन तीन बातोंको गदहेसे
सीखना चाहिये ॥ २१ ॥

य एतान् विंशतिगुणानाचरिष्यति मानवः ॥ कार्यावस्थासु सर्वासु ह्यजेयः स भविष्यति ॥ २२ ॥

टीका—जो नर इन बीस गुणोंको धारण करेगा
वह सब कार्यों में विजयी होगा ॥ २२ ॥

इति वृद्धचाणिक्ये षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अर्थनाशं मनस्तापं गृहिणीचरितानि च ॥ नीचवाक्यं चापमानं मतिमान्न प्रकाशयेत् ॥ १ ॥

टीका—धनका नाश, मनका ताप, गृहिणी का चरित, नीचका वचन और अपमान इनको बुद्धिमान् न प्रकाश करे ॥ १ ॥

धनधान्यप्रयोगेषु विद्यासंग्रहणेषु च ॥ आहारे व्यवहारे च त्यक्तलज्जः सुखी भवेत् ॥ २ ॥

टीका—अन्न और धनके व्यापारमें, विद्याके संग्रह करनेमें, आहर और व्यवहारमें जो पुरुष लज्जाको दूर रक्खेगा वह सुखी होगा ॥ २ ॥

संतोषामृततृप्तानां यत्सुखं शान्तिरेव च ॥ न च तद्धनलुब्धानामितश्चेतश्च धावताम् ॥ ३ ॥

टीका—सन्तोषरूप अमृतसे जो लोग तृप्त होते हैं उनको जो शान्ति सुख होताहै वह धनके लोभियोंको जो इधर उधर दौड़ा करतेहैं नहीं होता ३

संतोषास्त्रिषु कर्तव्यः स्वदारे भोजने धने ॥ त्रिषु चैव न कर्त्तव्योऽध्ययने जपदानयोः ॥ ४ ॥

टीका—अपनी स्त्री, भोजन और धन इन तीनोंमें संतोष करना चाहिये । पढना जप और दान इन तीनोंमें संतोष कभी न करना चाहिये ॥ ४ ॥

विप्रयोर्विप्रवह्न्योश्च दम्पत्योः स्वामिभृत्ययोः ॥ अन्तरेण न गन्तव्यं हलस्य वृषभस्य च ॥ ५ ॥

टीका—दो ब्राह्मण और अग्नि, स्त्री पुरुष, स्वामी और भृत्य, हल और बैल, इनके मध्य होकर नहीं जाना चाहिये ॥ ५ ॥

पादाभ्यां न स्पृशेदग्निं गुरुं ब्राह्मणमेव च । नैव गां न कुमारीं च न वृद्धं न शिशुं तथा ॥ ६ ॥

टीका—अग्नि, गुरु और ब्राह्मण इनको पैरसे कभी नहीं छूना चाहिये। वैसेही न गौको, न कुमारीको न वृद्धको, न और बालकको पैरसे छूना चाहिये६

शकटं पंचहस्तेन दशहस्तेन वाजिनम् ।
हस्ति हस्तसहस्रेण देशत्यागेन दुर्जनः ॥७॥

टीका—गाडीको पांच हाथ पर, घोडे को दश हाथ पर, हाथीको हजार हाथ पर, दुर्जन को देश त्याग करके छोडना चाहिये ॥ ७ ॥

हस्ती अंकुशमात्रेण वाजी हस्तेन ताड्यते ॥ शृङ्गी लगुडहस्तेन खड्गहस्तेन दुर्जनः ॥ ८ ॥

टीका—हाथी केवल अंकुशसे, घोडा हाथ से मारा जाताहै। सींगवाले जन्तु लाठीयुत हाथ से, और दुर्जन तरवारसंयुक्त हाथ से दण्ड पाताहै ८

तुष्यन्ति भोजने विप्रा मयूरा घनगर्जिते ॥ साधवः परसंपत्तौ खलाः परविपत्तिषु ॥ ९ ॥

टीका—भोजनके समय ब्राह्मण और मेघके गर्जनेपर मयूर, दूसरेको सम्पत्ति प्राप्त होने पर साधु और दूसरेकी विपत्ति आने पर दुर्जन सन्तुष्ट होतेहैं ॥ ९ ॥

अनुलोमेन बलिनं प्रतिलोमेन दुर्जनम् । आत्मतुल्यबलं शत्रुं विनयेन बलेन वा ॥ १० ॥

टीका—बली वैरीको उसके अनुकुल व्यवहार करने में यदि वह दुर्जन हो तो उसे प्रतिकूलता से वश करे, बल में अपने समान शत्रुको विनय अथवा बलसे जीते ॥ ॥

बाहुवीर्यबलं राज्ञो ब्राह्मणो ब्रह्मविद्बली । रूपयौवनमाधुर्यं स्त्रीणां बलमनुत्तमम् ॥ ११ ॥

टीका—राजाको बाहुवीर्य बल है और ब्राह्मण ब्रह्मज्ञानी व वेदपाठी बली होता है और स्त्रियों को सुन्दरता तरुणता और मधुरता अति उत्तम बल है ॥ ११ ॥

नात्यन्तं सरलैर्भाव्यं गत्वा पश्य वनस्थलीम् ॥ छिद्यन्ते सरलास्तत्र कुब्जास्तिष्ठन्ति पादपाः ॥ १२ ॥

टीका—अत्यन्त सीधे स्वभावसे नहीं रहना

चाहिये इस कारण कि बनमें जाकर देखो सीधे वृक्ष काटेजातेहैं और टेढे खडे रहतेहैं ॥ १२ ॥

यत्रोदकं तत्र वसन्ति हंसास्तथैव शुष्कं परिवर्जयन्ति । न हंसतुल्येन नरेण भाव्यं पुनस्त्यजंतः पुनराश्रयन्ते ॥ १३ ॥

टीका—जहां जल रहताहै वहाँही हंस बसतेहैं वैसेही सूखे सर को छोड देतेहैं। नरको हंसके समान नहीं रहना चाहिये कि वे बारबार छोड देतेहैं और बारबार आश्रय लेतेहैं ॥ १३ ॥

उपार्जितानां वित्तानां त्याग एव हि रक्षणम् । तडागोदरसंस्थानां परिश्रव इवांभसाम् ॥ १४ ॥

टीका—अर्जित धनोंका व्यय करनाही रक्षाहै । जैसे तडागके भीतरके जल का निकालना ॥१४॥

स्वर्गस्थितानामिह जीवलोके चत्वारि चिह्नानि वसंति देहे । दानप्रसंगो मधुरा च वाणी देवार्चनं ब्राह्मणतर्पणञ्च ॥ १५ ॥

टीका—संसार में आनेपर स्वर्गस्थायियों के

शरीरमें चार चिह्न रहतेहैं । दानका स्वभाव, मीठा वचन, देवता की पूजा, ब्राह्मण को तृप्त करना अर्थात् जिन लोगों में दान आदि लक्षण रहैं उन को जानना चाहिये कि वे अपने पुण्यके प्रभाव से स्वर्गवासी मर्त्यलोक में अवतार लिये हैं ॥१५॥

अत्यन्तकोपः कटुका च वाणी दरिद्रता च स्वजनेषु वैरम्। नीचप्रसङ्गः कुलहीन-सेवा चिह्नानि देहे नरकस्थितानाम् ॥१६॥

टीका—अत्यन्त क्रोध, कटु वचन, दरिद्रता, अपने जनोंमें वैर, नीचका संग, कुलहीनकी सेवा ये चिह्न नरकवासियोंकी देहोंमें रहतेहैं ॥ १६ ॥

गम्यते यदि मृगेन्द्रमन्दिरं लभ्यते करि-कपोलमौक्तिकम्। जम्बुकालयगते च प्राप्यते वत्सपुच्छखरचर्मखण्डनम् ॥ १७ ॥

टीका—यदि कोई सिंहकी गुहामें जापडे तो उसको हाथी के कपोल के मोती मिलतेहैं । और सियारके स्थानमें जानेपर बछवेकी पूंछ और गदहे के चमडे का टुकडा मिलताहै ॥ १७ ॥

शुनः पुच्छमिव व्यर्थं जीवितं विद्यया विना । न गुह्यगोपने शक्तं न च दंश... वारणे ॥ १८ ॥

टीका—कुत्तेकी पूंछके समान विद्या... व्यर्थ है । कुत्तेकी पूंछ गोप्य इ... बिना जीने सक्ती है, न मच्छर आदि जीवें... ह्रयको ढांप नहीं ...को उडासक्तीहै १८

वाचां शौचं च मन... ग्रहः । सर्वभूतदया... तः शौचमिन्द्रियनि- नाम् ॥ १९ ॥ ...शौचमेतच्छौचं परार्थि-

टीका—वचन... ना संयम, ... की शुद्धि, मनकी शुद्धि, इंद्रियों थैयों की ... जीवोंपर दया और पवित्रता ये परा- पु... शुद्धि है ॥ १९ ॥

...पे गन्धं तिले तैलं काष्ठे वह्निं पयो... तम् । इक्षौ गुडं तथा देहे पश्यात्मानं विवेकितः ॥ २० ॥

टीका—फूल में गन्ध, तिल में तेल, काष्ठ में आग, दूधमें घी, ऊख में गुड जैसे वैसेही देह में आत्म को विचार से देखो ॥ २० ॥

इति वृद्ध चाणिक्ये सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अधमा धनमिच्छन्ति धनं मानञ्च मध्यमाः । उत्तमा मानमिच्छंति मानो हि महतां धनम् ॥ १ ॥

टीका—अधम धनही चाहतेहैं। मध्यम धन और मान, उत्तम मानही चाहतेहैं इस कारण कि महात्माओं का धन मान ही हैं ॥ १ ॥

इक्षुरापः पयो मूलं ताम्बुलंफलमौषधम् । भक्षयित्वापि कर्त्तव्याः स्नानदानादिकाः क्रियाः ॥ २ ॥

टीका—ऊख, जल, दूध, मूल, पान, फल और औषध इन वस्तुओं के भोजन करनेपर भी स्नान, दान आदि क्रिया करनी चाहिये ॥ २ ॥

दीपो भक्षयते ध्वांतं कज्जलञ्च प्रसूयते । यदन्नं भक्ष्यते नित्यं जायते तादृशी प्रजा ॥ ३ ॥

टीका—दीप अन्धकार को खायजाताहै और काजलको जन्माता है। सत्य है जैसा अन्न सदा खाताहै उसके वैसीही सन्तति होतीहै ॥ ३ ॥

वित्तं देहि गुणान्वितेषु मतिमन्नान्यत्र देहि क्वचित् । प्राप्तं वारिनिधेर्जलं घन-मुखे माधुर्ययुक्तं सदा । जीवाँस्थावरजंग-माँश्च सकलान् संजीव्य भूमण्डलं । भूयः पश्यत देवकोटिगुणितं गच्छंतमम्भोनि-धिम् ॥ ४ ॥

टीका—हे मतिमन् गुणियों को धनदो औरोंको कभी मत दो, समुद्र से मेघके मुख में प्राप्त होकर जल सदा मधुर होजाता है । पृथ्वीपर चर अचर सब जीवोंको जिलाकर फिर देखो वही जल कोटिगुणा होकर उसी समुद्रमें चलाजाताहै ॥ ४ ॥

चाण्डलानां सहस्रैश्च सूरिभिस्तत्वदर्शि भिः । एको हि यवनः प्रोक्तो न नीचो यवनात्परः ॥ ५ ॥

टीका—तत्त्वदर्शियों ने कहा है कि सहस्र चाण्डालों के तुल्य एक यवन होताहै और यवन से नीच दूसरा कोई नहीं है ॥ ५ ॥

तैलाभ्यङ्गे चिताधूमे मैथुने क्षौरकर्मणि ।

तावद्भवति चाण्डालो यावत्स्नानं समाचरेत् ॥ ६ ॥

टीका—तेल लगाने पर, चिता के धूमलगने पर, स्त्रीप्रसंग करने पर, बार बनाने पर तबतक चाण्डालही बना रहताहै जबतकस्नान नहीं करता ६

अजीर्णे भेषजं वारि जीर्णे वारि बलप्रदम् । भोजने चामृतं वारि भोजनान्ते विषप्रदम् ॥ ७ ॥

टीका—अपच होने परजल औषध है, पच जाने पर जल बलको देताहै, भोजन के समय पानी अमृत के समान है, भोजन के अन्त में विष का फल देताहै ॥ ७ ॥

हतं ज्ञानं क्रियाहीनं हतश्चाज्ञानतो नरः। हतं निर्नायकं सैन्यं स्त्रियो नष्टा ह्यभर्तृकाः ८

टीका—क्रियाके बिना ज्ञान व्यर्थ है अज्ञानसे नर माराजाताहै, सेनापति के बिना सेना मारीजाती है, स्वामीहीन स्त्री नष्ट होजातीहै ॥ ८ ॥

वृद्धकाले मृता भार्या बन्धुहस्तगतं ध-

नम् । भोजनञ्च पराधीनं तिस्रः पुंसां विडम्बनाः ॥ ९ ॥

टीका—बुढापे में मरी स्त्री, बन्धुके हाथमें गया धन, दूसरे के आधीन भोजन ये तीनों पुरुषों की विडम्बना हैं अर्थात् दुःखदायक होतेहैं ॥ ९ ॥

अग्निहोत्रं विना वेदा न च दानं विना क्रिया ॥ न भावेन विना सिद्धिस्तस्माद्भावो हि कारणम् ॥ १० ॥

टीका—अग्निहोत्रके विना वेदका पढना व्यर्थ होताहै, दानके विनायज्ञादिक क्रिया नहीं बनतीं, भाव के विना कोई सिद्धि नहीं होती इस हेतु प्रेमही सबका कारण है ॥ १० ॥

न देवो विद्यते काष्ठे न पाषाणे न मृन्मये ॥ भावे हि विद्यते देवस्तस्माद्भावो हि कारणम् ॥ ११ ॥

टीका—देवता काठमें नहीं है, न पाषाणमें है, न मृत्तिकाकी मूर्तिमें है, निश्चय है कि देवता भाव में विद्यमान हैं इस हेतु भावही सबका कारण है ॥ ११ ॥

शान्तितुल्यं तपो नास्ति न संतोषा-त्परं सुखम् ॥ न तृष्णायाः परो व्याधि-र्न च धर्मो दयापरः ॥ १२ ॥

टीका—शान्तिके समान दूसरा तप नहीं है, न संतोषसे परे सुख, न तृष्णा से दूसरी व्याधि है, न दया से अधिक धर्म ॥ १२ ॥

क्रोधो वैवस्वतो राजा तृष्णा वैतरणी नदी । विद्या कामदुघा धेनुः सन्तोषो न-न्दनं वनम् ॥ १३ ॥

टीका—क्रोध यमराज है और तृष्णा वैतरणी नदी है, विद्या कामधेनु गाय है और सन्तोष इन्द्र की वाटिका है ॥ १३ ॥

गुणो भूषयते रूपं शीलं भूषयते कु-लम् ॥ सिद्धिर्भूषयते विद्यां भोगो भूषय-ते धनम् ॥ १४ ॥

टीका—गुण रूपको भूषित करताहै, शील कु-लको अलंकृत करताहै, सिद्धि विद्याकोभूषितकर-तीहै और भोगधनकोभूषितकरताहै ॥ १४ ॥

निर्गुणस्य हतं रूपं दुःशीलस्य हतं कुलम्। असिद्धस्य हता विद्या अभोगेन हतं धनम् ॥ १५ ॥

टीका—निर्गुणकी सुन्दरता व्यर्थहै। शीलहीन का कुल निंदित होताहै। सिद्धिके विना विद्या व्यर्थ है। भोगके विना धन व्यर्थहै ॥ १५ ॥

शुद्धं भूमिगतं तोयं शुद्धा नारी पतिव्रता। शुचिः क्षेमकरो राजा सन्तोषी ब्राह्मणः शुचिः ॥ १६ ॥

टीका—भूमिगत जल पवित्र होताहै। पतिव्रता स्त्री पवित्र होतीहै। कल्याण करनेवाला राजा पवित्र गिना जाताहै। ब्राह्मण सन्तोषी शुद्ध होताहै ॥१६

असंतुष्टा द्विजा नष्टाः संतुष्टाश्च महीभृतः ॥ सलज्जा गणिका नष्टा निर्लज्जाश्च कुलांगनाः ॥ १७ ॥

टीका—असंतोषी ब्राह्मण निन्दित गिनेजाते हैं। और संतोषी राजा सलज्ज वेश्या और लज्जाहीन कुलस्त्री निंदित गिनीजातीहैं ॥ १७ ॥

किं कुलेन विशालेन विद्याहीनेन देहिनाम् । दुष्कुलश्चापि विदुषो देवैरपि स पूज्यते ॥ १८ ॥

टीका—विद्याहीन बडे कुलसे मनुष्योंको क्या लाभ है। विद्वान्का नीचभी कुल देवताओं से पूजा पाताहै ॥ १८ ॥

विद्वान् प्रशस्यते लोके विद्वान्सर्वत्र गौरवम् ॥ विद्यया लभते सर्वं विद्या सर्वत्र पूज्यते ॥ १९ ॥

टीका—संसारमें विद्वान्ही प्रशंसित होताहै। विद्वान्ही सब स्थानमें आदरपाताहै । विद्याहीसे सब मिलताहै । विद्याही सब स्थानमें पूजित होतीहै ॥ १९ ॥

रूपयौवनसम्पन्ना विशालकुलसम्भवाः विद्याहीना न शोभन्ते निर्गन्धा इव किंशुकाः ॥ २० ॥

टीका—सुन्दर तरुणतायुत और बडे कुलमें उत्पन्नभी विद्याहीन नहीं शोभते जैसे विना गंधके फूल ॥ २० ॥

मांसभक्ष्याः सुरापाना मूर्खाश्चाक्षरवर्जिताः ॥ पशुभिः पुरुषाकारैर्भाराक्रांतास्ति मेदिनी ॥ २१ ॥

टीका—मांसके भक्षण करनेवाले, मदिरापानकरनेवाले, निरक्षरमूर्ख पुरुषाकार इनपशुओंकेभारसे पृथवी पीड़ित रहतीहै ॥ २१ ॥

अन्नहीनो दहेद्राष्ट्रं मन्त्रहीनश्च ऋत्विजः । यजमानं दानहीनो नास्ति यज्ञसमो रिपुः ॥ २२ ॥

टीका—यज्ञ यदि अन्नहीन हो तो राज्यको, मन्त्रहीनहो तो ऋत्विजों को, दानहीन होतो यजमानको जलाता है। इसकारण यज्ञके समान कोई शत्रु भी नहीं है ॥ २२ ॥

इति वृद्धचाणिक्येऽष्टमोऽध्याय ॥ ८ ॥

मुक्तिमिच्छसि चेत्तात विषयान् विषवत्त्यज । क्षमार्जवदयाशौचं सत्यं पीयूषवत्पिब ॥ १ ॥

टीका--हे भाई ! यदि मुक्ति चाहतेहो तो विषयों को विषके समान छोडदो । सहनशीलता, सरलता, दया, पवित्रता और सचाई को अमृत की नाई पियो ॥ १ ॥

परस्परस्य मर्माणि ये भाषन्ते नराधमाः । त एव विलयं यान्ति वल्मीकोदरसर्पवत् ॥ २ ॥

टीका--जो नराधम परस्पर अन्तरात्माके दुःखदायक वचन को भाषण करतेहैं । निश्चय है कि वे नष्ट होजातेहैं । जैसे वीमौर में पड कर सांप ॥२॥

गन्धः सुवर्णे फलमिक्षुदंडे नाकारि पुष्पं खलु चन्दनस्य ॥ विद्वान् धनी नृपतिर्दीर्घजीवी धातुः पुरा कोऽपि न बुद्धिदोऽभूत् ॥ ३ ॥

टीका—सुवर्ण में गन्ध, ऊख में फल, चन्दन में

फूल, विद्वान् धनी, राजा चिरजीवी न किया। इ-
ससे निश्चय है कि विधाता को पहिले कोई बु-
द्धिदाता न था ॥ ३ ॥

सर्वौषधीनाममृताः प्रधानाः सर्वेषु सौ-
ख्येष्वशनं प्रधानम्। सर्वेन्द्रियाणां नय-
नं प्रधानं सर्वेषु गात्रेषु शिरः प्रधानम् ४

टीका—सब ओषधियों में गुर्च प्रधान है। सब
सुख में भोजन श्रेष्ठ है। सब इन्द्रियों में आंख उत्तम
है। सब अंगों में शिर श्रेष्ठ है ॥ ४ ॥

दूतो न संचरति खे न चलेच्च वार्ता पूर्वं
न जल्पितमिदं न च संगमोऽस्ति। व्यो-
म्नि स्थितं रविशशिग्रहणं प्रशस्तं जा-
नाति यो द्विजवरः स कथं न विद्वान् ॥५॥

टीका—आकाश में दूत न जासक्ता, न वार्त्ता
की चर्चा चलसक्ती, न पहिले ही से किसी ने
कहहीरक्खाहै, न किसी से संगम होसक्ता, ऐसी
दशा में आकाश में स्थित सूर्य चन्द्र के ग्रहण को
जो द्विजवर स्पष्ट जानताहै कैसे विद्वान् नहींहै ॥५॥

विद्यार्थी सेवकः पांथः क्षुधार्तो भयकातरः। भांडारी प्रतिहारी च सप्त सुप्तान् प्रबोधयेत् ॥ ६ ॥

टीका—विद्यार्थी, सेवक, पथिक, भूखसे पीडित, भयसे कातर, भंडारी, द्वारपाल ये सात यदि सोते-हों तो जगादेना चाहिये ॥ ६ ॥

अहिं नृपञ्च शार्दूलं वृटिञ्च बालकं तथा। परश्वानञ्च मूर्खञ्च सप्त सुप्तान्न बोधयेत् ॥ ७ ॥

टीका—सांप, राजा, व्याघ्र, बर्रे, वैसेही बालक, दूसरे का कुत्ता और मूर्ख ये सात सोतेहों तो नहीं जगाना चाहिये ॥ ७ ॥

अर्थाधीताश्च यैर्वेदास्तथा शूद्रान्नभोजिनः। ते द्विजाः किं करिष्यंति निर्विषा इव पन्नगाः ॥ ८ ॥

टीका—जिनने धन के अर्थ वेद को पढा, वैसेही जो शूद्र का अन्न भोजन करतेहैं वे ब्राह्मण विषहीन सर्पके समान क्या करसक्तेहैं ॥ ८ ॥

यस्मिन्रुष्टे भयं नास्ति तुष्टे नैव धनागमः। निग्रहोऽनुग्रहो नास्ति स रुष्टः किं करिष्यति ॥ ६ ॥

टीका—जिसके क्रुद्ध होने पर न भय है न प्रसन्न होने पर धन का लाभ है, न दण्ड वा अनुग्रह होसक्ताहै वह रुष्ट होकर क्या करेगा ॥ ६ ॥

निर्विषेणापि सर्पेण कर्त्तव्या महती फणा ॥ विषमस्तु न चाप्यस्तु घटाटोपो भयंकरः ॥ १० ॥

टीका—विषहीन भी सापको अपना फण बढाना चाहिये। इस कारण कि विष हो वा न हो आडम्बर भयजनक होताहै ॥ १० ॥

प्रातर्द्यूतप्रसंगेन मध्याह्ने स्त्रीप्रसंगतः। रात्रौ चौरप्रसंगेन कालो गच्छति धीमताम् ॥ ११ ॥

टीका—प्रातःकाल में जुआडियों की कथा से अर्थात् महाभारत से, मध्याह्न में स्त्री के प्रसंग से अर्थात् रामायण से, रात्रि में चोर की वार्ता से

अर्थात् भागवत से बुद्धिमानों का समय बीतता है ॥ तात्पर्य यहहै कि महाभारत के सुनने से यह निश्चय होजाताहै कि जुवा, कलह और छल का घरहै इस लोक और परलोकमें उपकार करनेवाले कामों को महाभारतमें लिखी हुई रीतियों से करने पर उन कामों का पूरा फल होताहै इस कारण बुद्धिमान् लोग प्रातःकाल ही में महाभारत को सुनतेहैं । जिसमें दिन भर उसी रीति से काम करते जाय। रामायण सुनने से स्पष्ट उदाहरण मिलता है कि स्त्री के वश होनेसे अत्यन्त दुःख होता है और परस्त्री पर दृष्टि देने से पुत्र कलत्र जड मूल के साथ पुरुष का नाश होजाताहै, इस हेतु मध्याह्न में अच्छे लोग रामायण को सुनतेहैं और प्रायः रात्रि में लोग इन्द्रियोंके वश होजाते हैं और इन्द्रियों का यह स्वभाव है कि मन को अपने अपने विषयों में लगाकर जीव को विषयों में लगादेती हैं इसी हेतुसे इन्द्रियों को आत्मप्रप्रहारी भी कहतेहैं और जो लोग रात को भागवत सुनतेहैं वे कृष्ण के चरित्र को स्मरण करके इन्द्रियों के वश नहीं होते, क्योंकि सोलह ह-

जार से अधिक स्त्रियोंके रहते भी श्रीकृष्णचन्द्रइन्द्रि-
यों के वश न हुये और इन्द्रियों के संयम की रीति
भी जान जातेहैं ॥ ११ ॥

स्वहस्तग्रथिता माला स्वहस्तघृष्टच-
न्दनम्। स्वहस्तलिखितं स्तोत्रं शक्रस्या-
पि श्रियं हरेत् ॥ १२ ॥

टीका—अपने हाथ से गुथी माला, अपने हाथ
से घिसा चन्दन, अपने हाथ से लिखा स्तोत्र ये
इन्द्र की भी लक्ष्मी को हर लेतहैं ॥ १२ ॥

इक्षुदण्डास्तिलाः शूद्राः कांता हेम च
मेदिनी ॥ चन्दनं दधि ताम्बूलं मर्दनं
गुणवर्द्धनम् ॥ १३ ॥

टीका—ऊख, तिल, शूद्र, कांता, सोना, पृथ्वी,
चन्दन, दही, पान ये ऐसे पदार्थ हैं कि इनका
मर्दन गुणवर्द्धन है ॥ १३ ॥

दरिद्रता धीरतया विराजते कुवस्त्रता
शुभ्रतया विराजते । कदन्नता चोष्ण-
तया विराजते कुरूपता शीलतया विरा-
जते ॥ १४ ॥

टीका—दरिद्रता भी धीरता से शोभतीहै। स्वच्छता से कुवस्त्र सुन्दर जान पडताहै। कुअन्न भी उष्णता से मीठा लगताहै। कुरूपता भी सुशीलता हो तो शोभतीहै॥ १४ ॥

इति वृद्धचाणिक्ये नवमोऽध्यायः॥ ९॥

धनहीनो न हीनश्च धनिकः स सुनिश्चयः। विद्यारत्नेन हीनो यः स हीनः सर्ववस्तुषु॥ १॥

टीका—धनहीन हीन नहीं गिनाजाता। निश्चय है कि वह धनीही है। विद्यारत्न से जो हीन है वह सब वस्तुओं में हीन है॥ १॥

दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं पिबेज्जलम्। शास्त्रपूतं वदेद्वाक्यं मनःपूतं समाचरेत्॥ २॥

टीका—दृष्टि से शोधकर पांव रखना उचितहै। वस्त्र से शुद्धकर जल पीना उचित है। शास्त्र से शुद्ध कर वाक्य बोले। मन से शोचकर कार्य करना चाहिये॥ २॥

सुखार्थी चेत्त्यजेद्विद्यां विद्यार्थी चेत्त्यजे-त्सुखम् । सुखार्थिनः कुतो विद्याः सुखं विद्यार्थिनः कुतः ॥ ३ ॥

टीका—यदि सुख चाहै तो विद्या को छोडदे । यदि विद्या चाहै तो सुखका त्याग करै । सुखार्थी को विद्या कैसे होगी और विद्यार्थीको सुख कैसे होगा ३

कवयः किं न पश्यन्ति किं न कुर्वन्ति योषितः ॥ मद्यपाः किं न जल्पन्ति किं न खादन्ति वायसाः ॥ ४ ॥

टीका—कवि क्या नहीं देखते, स्त्री क्या नहीं कर-सक्ती, मद्यपी क्या नहीं बकते, कौवे क्या नहींखाते ४

रङ्कं करोति राजानं राजानं रङ्कमेव च । धनिनं निर्द्धनश्चैव निर्धनं धनिनं विधिः ५

टीका—निश्चय है कि विधि रंक को राजा, राजा को रंक, धनी को निर्धन, निर्धन को धनी कर-देताहै ॥ ५ ॥

लुब्धानां याचकः शत्रुर्मूर्खाणां बोधको

रिपुः । जारस्त्रीणां पतिः शत्रुश्चौराणां चन्द्रमा रिपुः ॥ ६ ॥

टीका—लोभियोंका याचक वैरी होताहै, मूर्खोंका समझानेवाला शत्रु होताहै, पुंश्चली स्त्रियोंका पति शत्रुहै, चोरोंका चन्द्रमा शत्रु है ॥ ६ ॥

येषां न विद्या न तपो न दानं न चापि शीलं न गुणो न धर्मः । ते मृत्युलोके भुवि भारभूता मनुष्यरूपेण मृगाश्चरंति ॥७॥

टीका—जिन लोगोंको न विद्या है, न तप है, न दान है, न शील है, न गुण है, और न धर्म है, वे संसारमें पृथ्वी पर भाररूप होकर मनुष्य रूपसे मृग फिररहेहैं ॥ ७ ॥

अन्तःसारविहीनानामुपदेशो न जायते। मलयाचलसंसर्गान्न वेणुश्चन्दनायते॥ ८॥

टीका—गंभीरता विहीन पुरुषोंको शिक्षा देना सार्थक नहीं होता । मलयाचलके सङ्गसे बाँस चन्दन नहीं होजाता ॥ ८ ॥

यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा शास्त्रं तस्य

करोति किम् । लोचनाभ्यां विहीनस्य दर्पणः किं करिष्यति ॥ ६ ॥

टीका—जिसकी स्वाभाविक बुद्धि नहीं है । उसका शास्त्र क्या करसक्ताहै । आखोंसे हीनको दर्पण क्या करेगा ॥ ६ ॥

दुर्जनं सज्जनं कर्त्तुमपायो न हि भूतले । अपानं शतधा धौतं न श्रेष्ठमिन्द्रियं भवेत् ॥ १० ॥

टीका—दुर्जनको सज्जन करनेके लिये पृथ्वीतलमें कोई उपाय नहीं हैं । मलके त्याग करनेवाली इन्द्रिय सौ बार भी धोईजाय तो भी श्रेष्ठ इंद्रिय न होगी ॥ १० ॥

आप्तद्वेषाद्भवेन्मृत्युः परद्वेषाद्धनक्षयः । राजद्वेषाद्भवेन्नाशो ब्रह्मदोषात्कुलक्षयः ११

टीका—बडोंके द्वेष से मृत्यु होतीहै, शत्रु से विरोध करने से धन का क्षय होताहै, राजाके द्वेषसे नाश होता है और ब्राह्मण के द्वेष से कुल का क्षय होताहै ॥ ११ ॥

वरं वने व्याघ्रगजेन्द्रसेविते द्रुमालये पत्रफलाम्बुसेवनम् । तृणेषु शय्या शतजीर्णवल्कलं न बन्धुमध्ये धनहीनजीवनम् ॥ १२ ॥

टीका—वन में बाघ और बड़े बड़े हाथियों से सेवित वृक्ष के नीचे पत्ता फल खाना वा जलका पीना, घास पर सोना, सौ टुकडे के बकलों का पहिनना, ये श्रेष्ठ हैं पर बन्धुओं के मध्य धनहीन जीना श्रेष्ठ नहीं है ॥ १२ ॥

विप्रो वृक्षस्तस्य मूलञ्च संध्या वेदाः शाखाः धर्म्मकर्म्माणि पत्रम् । तस्मान्मूलं यत्नतो रक्षणीयं छिन्ने मूले नैव शाखा न पत्रम् ॥ १३ ॥

टीका—ब्राह्मण वृक्ष है । उसकी जड़ सन्ध्या है। वेद शाखा हैं। और धर्म कर्म के पत्ते हैं। इस कारण प्रयत्न करके जड़ की रक्षा करनी चाहिये जड कट जाने पर न शाखा रहेगी न पत्ते ॥ १३ ॥

माता च कमला देवी पिता देवो जना-

र्दनः । बान्धवाः विष्णुभक्ताश्च स्वदेशो भुवनत्रयम् ॥ १४ ॥

टीका—जिसकी लक्ष्मी माता है । और विष्णु भगवान् पिता है । और विष्णु के भक्त ही बांधव हैं । उसको तीनों लोक स्वदेश ही हैं ॥ १४ ॥

एकवृक्षसमारूढा नानावर्णा विहंगमाः। प्रभाते दिक्षु दशसु का तत्र परिवेदना॥१५

टीका—नाना प्रकार के पखेरू एक वृक्ष पर बैठते हैं । प्रभात समय दशों दिशा में होजाते हैं । उसमें क्या शोच है ॥ १५ ॥

बुद्धिर्यस्य बलं तस्य निर्बुद्धेश्च कुतो बलम् । वने सिंहो मदोन्मत्तः शशकेन निपातितः ॥ १६ ॥

टीका—जिसको बुद्धि है उसीको बल है। निर्बुद्धि को बल कहांसे होगा। देखो वन में मद से उन्मत्त सिंह चौगडा से मारागया ॥ १६ ॥

का चिन्ता मम जीवने यदि हरिर्विश्वम्भरो गीयते नो चेदर्भकजीवनाय जन-

नीस्तन्यं कथं निःसरेत् । इत्यालोच्य मुहुर्मुहुर्यदुपते लक्ष्मीपते केवलं त्वत्पादाम्बुजसेवनेन सततं कालो मया नीयते ॥ १७ ॥

टीका—मेरे जीवनमें क्या चिन्ता है। यदि हरि विश्व का पालनेवाला कहलाताहै । ऐसा न हो तो बच्चे के जीने के हेतु माता के स्तन में दूध कैसे बनाते, इसको बार बार विचार करके यदुपति ! हे लक्ष्मीपति ! सदा केवल आपके चरण कमल की सेवा से मैं समय को बितातांहूं ॥ १७ ॥

गीर्वाणवाणीषु विशिष्टबुद्धिस्तथापि भाषान्तरलोलुपोऽहम् । याथासुधायाममरेषु सत्यां स्वर्गांगनानामधरासवेरुचिः १८

टीका—यद्यपि संस्कृत ही भाषामें विशेष ज्ञानहै तथापि दूसरी भाषा का भी मैं लोभी हूं। जैसे अमृत के रहते भी देवतओं की इच्छा स्वर्ग की स्त्रियों के ओष्ठ के आसव में रहती है ॥ १८ ॥

अन्नाद्दशगुणं पिष्टं पिष्टाद्दशगुणं पयः ।

पयसोऽष्टगुणं मांसं मांसाद्दशगुणं घृतम् १६

टीका—चांवलसे दशगुणा पिसानमें गुणहै, पिसान सेदशगुणा दूध में, दूध से आठगुणा मांसमें, मांससे दशगुणा घीमें ॥ १६ ॥

शाकेन रोगा वर्द्धन्ते पयसा वर्द्धते तनुः ।
घृतेन वर्द्धते वीर्यं मांसान्मांसं प्रवर्द्धते २०

टीका—साग से रोग बढ़ताहै दूधसे शरीर बढ़ताहै, घीसे वीर्य बढ़ताहै, मांस से मांस बढ़ताहै ॥ २० ॥

इति वृद्धचाणक्ये दशमोऽध्यायः ॥

दातृत्वं प्रियवक्तृत्वं धीरत्वमुचितज्ञता । अभ्यासेन न लभ्यन्ते चत्वारः सहजा गुणाः ॥ १ ॥

टीका—उदारता, प्रियबोलना, धीरता, उचित का ज्ञान ये अभ्यास से नहीं मिलते। ये चारों स्वाभाविक गुण हैं ॥ १ ॥

आत्मवर्गं परित्यज्य परवर्गं समाश्रयेत् ।

स्वयमेव लयं याति यथा राजन्यधर्म्मतः २

टीका—जो अपनी मण्डलीको छोड़ परके वर्ग का आश्रय लेताहै वह आपही लय को प्राप्त होजाताहै। जैसे राजा के अधर्म से ॥ २ ॥

हस्ती स्थूलतनुः स चांकुशवशः किं हस्तिमात्रोऽङ्कुशो दीपे प्रज्वालिते प्रणश्यति तमः किं दीपमात्रं तमः। वज्रेणापि हताः पतन्ति गिरयः किं वज्रमात्रं नगाः तेजो यस्य विराजते स बलवान् स्थूलेषु कः प्रत्ययः ॥ ३ ॥

टीका—हाथीका स्थूल शरीर है वह भी अंकुश के वश रहता है तो क्या हस्ती के समान अंकुश है। दीप के जलने पर अंधकार आपही नष्ट होजाताहै तो क्या दीप के तुल्य तम है। बिजुली के मारे पर्वत गिरजाते हैं तो क्या बिजुली पर्वत के समान है। जिसमें तेज विराजमान रहताहै वह बलवान् गिना जाताहै। मोटे का कौन विश्वास है ॥ ३ ॥

कलौ दशसहस्राणि हरिस्त्यजति मे-

दिनीम् । तदर्द्धं जाह्नवीतोयं तदर्द्धं ग्राम-देवताः ॥ ४ ॥

टीका—कलियुग में दशसहस्र वर्ष के बीतने पर विष्णु पृथ्वी को छोड़ देतेहैं। उसके आधे पर गंगा-जी जल को, तिसके आधे के बीतनेपर ग्राम देवता ग्रामको॥ ४ ॥

गृहासक्तस्य नो विद्या नो दया मांस-भोजिनः । द्रव्यलुब्धस्य नो सत्यं स्त्रै-णस्य न पवित्रता ॥ ५ ॥

टीका—गृह में आसक्त पुरुषों को विद्या नहीं होती, मांस के आहारी को दया नहीं, द्रव्यलोभी को सत्यता नहीं होती और व्यभिचारी को पवित्रता नहीं होती ॥ ५ ॥

न दुर्जनः साधुदशामुपैति बहुप्रकारैर-पि शिक्ष्यमाणः । आमूलसिक्तः पयसा घृतेन न निम्बवृक्षो मधुरत्वमेति ॥ ६ ॥

टीका—निश्चय है कि दुर्जन अनेक प्रकार से सिखलाया भी जाय, पर उसमें साधुता नहीं आती।

दूध और घी से जड से पालो पर्यंत नीम का वृत्त सींचा भी जाय, पर उसमें मधुरता नहीं आती॥६॥

अन्तर्गतमलो दुष्टस्तीर्थस्नानशतैरपि । न शुद्धयति तथा भाण्डं सुराया दाहितञ्च यत् ॥ ७ ॥

टीका—जिसके हृदय में पाप हैं वही दुष्ट है। वह तीर्थ में सौ बार स्नान से भी शुद्ध नहीं होता। जैसे मदिरा का पात्र जलाया भी जायतो भी शुद्ध नहीं होता ॥ ७ ॥

न वेत्ति यो यस्य गुणप्रकर्षं स तं सदा निंदति नात्र चित्रम् । यथा किराती करिकुंभलब्धां मुक्तां परित्यज्य बिभर्ति गुंजाम् ॥ ८ ॥

टीका—जो जिसके गुणकी प्रकर्षता नहीं जानता वह निरन्तर उसकी निन्दा करताहै। जैसे भिल्लिनी हाथी के मस्तक के मोती को छोड घुंघुची को पहिनतीहै ॥ ८ ॥

ये तु संवत्सरं पूर्णं नित्यं मौनेन भु-

ङ्क्ते । युगकोटीसहस्रं तैः स्वर्गलोके महीयते ॥ ९ ॥

टीका—जो वर्ष भर नित्य चुपचाप भोजन करताहै वह सहस्र कोटि युग लों स्वर्गलोक में पूजा जाताहै ॥ ९ ॥

कामक्रोधौ तथा लोभं स्वादुशृङ्गारकौतुके । अतिनिद्रातिसेवे च विद्यार्थी ह्यष्ट वर्जयेत् ॥ १० ॥

टीका—काम, क्रोध वैसेही लोभ, मीठी वस्तु, शृङ्गार, खेल, अतिनिद्रा और अतिसेवा इन आठों को विद्यार्थी छोड देवें ॥ १० ॥

अकृष्टफलमूलानि वनवासरतिः सदा । कुरुतेऽहरहः श्राद्धमृषिर्विप्रः स उच्यते ॥ ११ ॥

टीका—विना जोती भूमि से उत्पन्न फल वा मूल को खाकर सदा वनवास करताहो और प्रतिदिन श्राद्ध करे ऐसा ब्राह्मण ऋषि कहलाताहै ॥ ११ ॥

एकाहारेण सन्तुष्टः षट्कर्मनिरतः सदा ।

ऋतुकालाभिगामी च स विप्रो द्विज उच्यते ॥ १२ ॥

टीका—एक समय के भोजन से सन्तुष्ट रहकर पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ करना, कराना, दान देना और लेना इन छः कर्मोंमें सदा रत हो और ऋतुकाल में स्त्रीका संग करे तो ऐसे ब्राह्मण को द्विज कहतेहैं १२

लौकिके कर्म्मणि रतः पशूनां परिपालकः । वाणिज्यकृषिकर्मा यः स विप्रो वैश्य उच्यते ॥ १३ ॥

टीका—सांसारिक कर्म में रत हो और पशुओं को पालन बनियाई और खेती करनेवाला हो वह विप्र वैश्य कहलाताहै ॥ १३ ॥

लाक्षादितैलनीलीनां कौसुम्भमधुसर्पिषाम् । विक्रेता मद्यमांसानां स विप्रः शूद्र उच्यते ॥ १४ ॥

टीका—लाह आदि पदार्थ, तेल, नीली, पीताम्बर, मधु, घी, मद्य और मांस जो इनका बेचने वाला हो वह ब्राह्मण शूद्र कहाजाताहै ॥ १४ ॥

परकार्य्यविहंता च दाम्भिकः स्वार्थसाधकः । छली द्वेषी मृदुः क्रूरो विप्रो मार्जार उच्यते ॥ १५ ॥

टीका—दूसरे के काम को बिगाडनेवाला, दम्भी, अपने ही अर्थ का साधनेवाला, छली, द्वेषी, ऊपर मृदु और अन्तःकरण में क्रूर होतो वह ब्राह्मण बिलार कहाजाताहै ॥ १५ ॥

वापीकूपतडागानामारामसुरवेश्मनाम्। उच्छेदने निराशंकः स विप्रो म्लेच्छ उच्यते ॥ १६ ॥

टीका—बावली, कुँआ, तालाब, वाटिका, देवालय इनके उच्छेदन करने से जो निडर हो वह ब्राह्मण म्लेच्छ कहलाताहै ॥ १६ ॥

देवद्रव्यं गुरुद्रव्यं परदाराभिमर्शनम् । निर्वाहः सर्वभूतेषु विप्रश्चाण्डाल उच्यते ॥ १७ ॥

टीका—देवता का द्रव्य और गुरु का द्रव्य जो हरताहै। और परस्त्री से संग करताहै । और सब प्रा-

णियों में निर्वाह करलेताहै। वह विप्र चाण्डाल कहलाताहै अर्थात् (चडि कोपे) इस धातु से चाण्डाल पद साधु होताहै ॥ १७ ॥

देयं भोज्यधनं धनं सुकृतिभिर्नो संचयस्तस्य वै श्रीकर्णस्य बलेश्च विक्रमपतेरद्यापि कीर्तिः स्थिता। अस्माकं मधुदानभोगरहितं नष्टं चिरात्संचितं निर्वाणादिति नैजपादयुगलं घर्षंत्यहो मक्षिकाः ॥ १८ ॥

टीका—सुकृतियों को चाहिये कि भोगयोग्य धन को और द्रव्य को देवें; कभी न संचें। कर्ण, बलि, विक्रमादित्य इन राजाओं की कीर्ति इस समय पर्यन्त वर्तमान है। दान, भोगसे रहित बहुत दिन से संचित हमारेलोगोंका मधु नष्ट होगया निश्चय है कि मधुमक्खियां मधु के नाश होनेके कारण दोनों पांवोंको घिसा करतीहैं ॥ १८ ॥

इति वृद्धचाणिक्ये एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

सानन्दं सदनं सुतास्तु सुधियः कांता प्रियालापिनी इच्छापूर्ति धनं स्वयोषिति रतिः स्वाज्ञापराः सेवकाः। आतिथ्यं शिवपूजनं प्रतिदिनं मिष्टान्नपानं गृहे साधोः संगमुपासते च सततं धन्यो गृहस्थाश्रमः ॥ १ ॥

टीका—यदि आनन्दयुत घर मिले और लड़के पण्डित हों, स्त्री मधुरभाषिणी हो, इच्छा के अनुसार धन हो, अपनी ही स्त्री में रति हो, आज्ञापालक सेवक मिलें, अतिथि की सेवा और शिव की पूजा होतीजाय, प्रतिदिन गृह हीमें मीठा अन्न और जल मिले, सर्वदा साधु के संग की उपासना हो तो गृहस्थाश्रम ही धन्य है ॥ १ ॥

आर्तेषु विप्रेषु दयान्वितश्च यच्छ्रद्धया स्वल्पमुपैति दानम्। अनंतपारं समुपैति राजन्! यद्दीयते तन्न लभेद्द्विजेभ्यः॥२॥

टीका—जो दयावान् पुरुष आर्त्त ब्राह्मणों को श्रद्धा से थोड़ा भी दान देताहै। उस पुरुष को अनन्त होकर

वह मिलताहै। जो दिया जाताहै वह ब्राह्मणों से नहीं मिलता ॥ २ ॥

दाक्षिण्यं स्वजने दया परजने शाठ्यं सदा दुर्जने प्रीतिः साधुजने स्मयः खल-जने विद्वज्जने चार्जवम्। शौर्यं शत्रुज-ने क्षमा गुरुजने नारीजने धूर्त्तता इत्थं ये पुरुषाः कलासु कुशलास्तेष्वेव लोक-स्थितिः ॥ ३ ॥

टीका—अपने जनमें दक्षता, दूसरे जन में दया, सदा दुर्जन में दुष्टता, साधुजन में प्रीति, खल में अभिमान, विद्वानों में सरलता, शत्रुजन में शूर-ता, बड़े लोगों के विषय में क्षमा, स्त्री से काम प-ड़ने पर धूर्त्तता, इस प्रकार से जो लोग कला में कुशल होतेहैं उन्हीं में लोक की मर्यादा रहतीहै ३

हस्तौ दानविवर्जितौ श्रुतिपुटौ सारस्व-तद्रोहिणौ नेत्रे साधुविलोकनेन रहिते पादौ न तीर्थं गतौ। अन्यार्जितवित्तपू-र्णमुदरं गर्वेण तुंगं शिरो रे रे जम्बुक मु-

श्व मुञ्च सहसा नीचं सुनिंद्यं वपुः ॥ ४ ॥

टीका—हाथ दान रहित हैं, कान वेद शास्त्र के विरोधी हैं, नेत्रों ने साधु का दर्शन नहीं किया, पांवों ने तीर्थगमन नहीं किया- अन्याय से अर्जित धन से उदर भरा है और गर्व से शिर ऊँचा होरहाहै । रे रे सियार ऐसे नीच निंद्य शरीर को शीघ्र छोड़ ॥ ४ ॥

येषां श्रीमद्यशोदासुतपदकमले नास्ति भक्तिर्नराणां येषामाभीरकन्याप्रियगुणकथने नानुरक्ता रसज्ञा । येषां श्रीकृष्णलीलाललितरसकथासादरौ नैव कर्णौ धिक्तान् धिक्तान् धिगेतान् कथयति सततं कीर्त्तनस्थो मृदङ्गः ॥ ५ ॥

टीका—श्रीयशोदासुत के पदकमलमें जिन लोगों की भक्ति नहीं रहती, जिन लोगों की जीभ अहीरों की कन्याओं के प्रिय के अर्थात् कृष्ण के गुणगान में प्रीति नहीं रखती और श्रीकृष्णजी की लीला की ललित कथा का आदर जिनके कान नहीं करते, उन लोगों को धिक् है उन्हीं लोगों को धिक् है । ऐसा कीर्त्तन का मृदंग सदा कहताहै ॥ ५ ॥

पत्रं नैव यदा करीलविटपे दोषो वसन्तस्य किं नोलूकोऽप्यवलोकते यदि दिवा सूर्यस्य किं दूषणम् ॥ वर्षा नैव पतन्ति चातकमुखे मेघस्य किं दूषणं यत्पूर्वं विधिना ललाटलिखितं तन्मार्जितुं कः क्षमः ॥ ६ ॥

टीका—यदि करील के वृक्ष में पत्ते नहीं होते तो वसन्त का क्या अपराध है। यदि उलूक दिन में नहीं देखता तो सूर्य्य का क्या दोष है। वर्षा चातक के मुख में नहीं पड़ती इसमें मेघ का क्या अपराध है। पहिले ही ब्रह्मा ने जो कुछ ललाट में लिख रक्खा है उसे मिटाने को कौन समर्थ है ॥६॥

सत्संगाद्भवति हि साधुता खलानां साधूनां न हि खलसंगता खलत्वम् । आमोदं कुसुमभवं मृदेव धत्ते मृद्गन्धं न कुसुमानि धारयन्ति ॥ ७ ॥

टीका—निश्चय है कि अच्छे के संग से दुर्जनों में साधुता आजातीहै, परन्तु साधुओं में दुष्टों की

संगति से असाधुता नहीं आती । फूल के गन्ध को मिट्टी लेलेतीहै । मिट्टी के गन्ध को फूल कभी नहीं धारण करते ॥ ७ ॥

साधूनां दर्शनं पुण्यं तीर्थभूता हि साधवः । कालेन फलते तीर्थं सद्यः साधुसमागमः ॥ ८ ॥

टीका—साधुओं का दर्शन ही पुण्य है । इस कारण कि साधु तीर्थरूप हैं । समय से तीर्थ फल देताहै । साधुओं का संग शीघ्र ही काम करदेता है ॥ ८ ॥

विप्रास्मिन्नगरे महान् कथय कस्तालद्रुमाणां गणः को दाता रजको ददाति वसनं प्रातर्गृहीत्वा निशि । को दक्षः परवित्तदारहरणे सर्वोऽपि दक्षो जनः कस्माज्जीवसि हे सखे विषकृमिन्यायेन जीवाम्यहम् ॥ ९ ॥

टीका—हे विप्र ! इस नगर में कौन बडा है ? ताड़ के पेड़ोंका समुदाय । कौन दाता है ? धोबी

प्रातः काल वस्त्र लेताहै, रात्रि में दे देताहै। चतुर कौन है? दूसरे के धन और स्त्री के हरण में सब ही कुशल हैं। कैसे जीते हो? हे मित्र! विष का कीडा विष ही में जीता है वैसेही मैं भी जीताहूं ॥ ९ ॥

न विप्रपादोदककर्दमानि न वेदशास्त्रध्वनिगर्जितानि। स्वाहास्वधाकारविवर्जितानि स्मशानतुल्यानि गृहाणि तानि ॥ १० ॥

टीका—जिन घरों में ब्राह्मण के पाओं के जल से कीचड न भया हो और न वेद शास्त्र के शब्द की गर्जना और जो गृह स्वाहा स्वधा से रहित हो उसको श्मशान के समान समझना चाहिये ॥ १० ॥

सत्यं माता पिता ज्ञानं धर्मो भ्राता दया सखा। शान्तिः पत्नी क्षमा पुत्रः षडेते मम बान्धवाः ॥ ११ ॥

टीका—सत्य मेरी माता है और ज्ञान पिता,

धर्म मेरा भाई है और दया मित्र, शान्ती मेरी स्त्री है और क्षमा पुत्र, ये ही छः मेरे बन्धु हैं ॥ ११॥ किसी संसारी पुरुष ने ज्ञानी को देख कर चकित हो पूछा कि संसार में माता, पिता, भाई, मित्र, स्त्री, पुत्र ये जितनाही अच्छे से अच्छे हों उतनाही संसार में आनन्द होताहै। तुझ को परम आनन्द में मग्न देखताहूँ तो तुझ को भी कहीं न कहीं कोई न कोई उनमें से होगा ज्ञानी ने समझा कि जिस दशा को देख कर यह चकित है वह दशा क्या सांसारिक कुटुम्बों से होसक्ती है। इस कारण जिनसे मुझे परम आनन्द होताहै उन्हीको इस से कहूँ कदाचित् यह भी इनको स्वीकार करे ॥ ११ ॥

अनित्यानि शरीराणि विभवो नैव शाश्वतः। नित्यं संनिहितो मृत्युः कर्त्तव्यो धर्म्मसंग्रहः ॥ १२ ॥

टीका—शरीर अनित्य है, विभव भी सदा नहीं रहता, मृत्यु सदा निकट ही रहतीहै। इस कारण धर्म का संग्रह करना चाहिये ॥ १२ ॥

निमन्त्रणोत्सवा विप्रा गावो नवतृणो-त्सवाः। पत्युत्साहवती नार्यः अहं कृष्ण रणोत्सवः ॥ १३ ॥

टीका—निमन्त्रण ब्राह्मणों का उत्सव, नवीन घास गायों का उत्सव है। पति के उत्साह से स्त्रियें का उत्साह होताहै। हे कृष्ण ! मुझको रण-ही उत्सव है ॥ १३ ॥

मातृवत्परदारांश्च परद्रव्याणि लोष्टव-त्। आत्मवत्सर्वभूतानि यः पश्यति स पश्यति ॥ १४ ॥

टीका—दूसरे की स्त्री को माता के समान, दूसरे के द्रव्य को ढेला के समान, अपने समान सब प्राणियों को जो देखता है वही देखताहै ॥ १४ ॥

धर्मे तत्परता मुखे मधुरता दाने समु-त्साहता मित्रे वंचकता गुरौ विनयता चित्तेऽतिगम्भीरता। आचारे शुचिता गुणे रसिकता शास्त्रेषु विज्ञातृता रूपे सु-न्दरता शिवे भजनता त्वय्यस्ति भो रा-घव ॥ १५ ॥

टीका—धर्म में तत्परता, मुख में मधुरता, दान में उत्साहता, मित्र के विषय में निश्छलता, गुरु से नम्रता, अन्तःकरण में गम्भीरता, आचार में पवित्रता, गुण में रसिकता, शास्त्रों में विशेष ज्ञान, रूप में सुन्दरता और शिव की भक्ति, हे राघव ! ये आपही में हैं ॥ १५ ॥

काष्ठं कल्पतरुः सुमेरुरचलश्चिंतामणिः प्रस्थरः सूर्यस्तीव्रकरः शशी क्षयकरः चारो हि वारांनिधिः । कामो नष्टतनुर्बलिर्दितिसुतो नित्यं पशुः कामगौर्नैतांस्ते तुलयामि भो रघुपते ! कस्योपमा दीयते ॥ १६ ॥

टीका—कल्पवृक्ष काठ है । सुमेरु अचल है । चिन्तामणि पत्थर है । सूर्य की किरण अत्यन्त उष्ण हैं । चन्द्रमा की किरण क्षीण होजातीहैं । समुद्र खारा है । काम के शरीर नहीं है । बलि दैत्य है । कामधेनु सदा पशु ही है । इस कारण आप के साथ इनकी तुलना नहीं देसक्ते । हे रघुपति ! फिर आप को किसकी उपमा दीजाय ॥ १६ ॥

विद्या मित्रं प्रवासे च भार्या मित्रं गृहेषु च। व्याधिस्थस्यौषधं मित्रं धर्मो मित्रं मृतस्य च ॥ १७ ॥

टीका—प्रवास में विद्या हित करतीहै, घर में स्त्री मित्र है, रोगग्रस्त पुरुष का हित औषध होताहै और धर्म मरे का उपकार करताहै ॥ १७ ॥

विनयं राजपुत्रेभ्यः पण्डितेभ्यः सुभाषितम्। अनृतं द्यूतकारेभ्यः स्त्रीभ्यः शिक्षेत कैतवम् ॥ १८ ॥

टीका—सुशीलता राजा के लडकों से, प्रियवचन पण्डितों से, असत्य जुआड़ियों से और छल स्त्रियों से सीखना चाहिये ॥ १८ ॥

अनालोक्य व्ययं कर्ता ह्यनाथः कलहप्रियः। आतुरः सर्वक्षेत्रेषु नरः शीघ्रं विनश्यति ॥ १९ ॥

टीका—विना विचारे व्यय करनेवाला, सहायक के न रहने पर भी कलह में प्रीति रखनेवाला और सब जाति की स्त्रियों में भोग के लिये व्याकुल होनेवाला पुरुष शीघ्र ही नष्ट होजाताहै ॥ १९ ॥

नाहारं चिन्तयेत्प्राज्ञो धर्ममेकं हि चिन्तयेत्। आहारो हि मनुष्याणां जन्मना सह जायते ॥ २० ॥

टीका—पण्डित को आहार की चिंता नहीं करनी चाहिये। एक धर्म को निश्चय के हेतु से शोचना चाहिये। इस हेतु कि आहार मनुष्यों को जन्म के साथ ही उत्पन्न होताहै ॥ २० ॥

धनधान्यप्रयोगेषु विद्यासंग्रहणे तथा। आहारे व्यवहारे च त्यक्तलज्जः सुखी भवेत् ॥ २१ ॥

टीका—धन, धान्य के व्यवहार करनेमें, वैसेही विद्या के पढ़ने पढ़ाने में, आहार और राजा की सभा में, किसीके साथ विवाद करने में जो लज्जा को छोड़े रहेगा वह सुखी होगा ॥ २१ ॥

जलबिन्दुनिपातेन क्रमशः पूर्य्यते घटः। स हेतुः सर्वविद्यानां धर्मस्य च धनस्य च ॥ २२ ॥

टीका—क्रम क्रम से एक एक बूंद के गिरने से

घड़ा भर जाताहै । यही सब विद्या, धर्म और धन का भी कारण है ॥ २२ ॥

वयसः परिणामेऽपि यः खलः खल एव सः । संपक्वमपि माधुर्यं नोपयातीन्द्रवारुणम् ॥ २३ ॥

टीका—वय के परिणाम पर भी जो खल रहता हैं । सो खल ही बना रहता है । अत्यन्त पकी भी तितलौकी मीठी नहीं होती ॥ २३ ॥

इति वृद्धचाणिक्ये द्वादशोऽध्यायः ।

मुहूर्त्तमपि जीवेच्च नरः शुक्लेन कर्मणा । न कल्पमपि कष्टेन लोकद्वयविरोधिना १

टीका—उत्तम कर्म से मनुष्यों को मुहूर्त भर का जीना भी श्रेष्ठ है । दोनों लोकों के विरोधी दुष्ट कर्म से कल्प भर का भी जीना उत्तम नहीं है ॥१॥

गते शोको न कर्त्तव्यो भविष्यं नैव चिन्तयेत् । वर्त्तमानेन कालेन प्रवर्त्तन्ते विचक्षणाः ॥ २ ॥

टीका—गत वस्तु का शोक नहीं करना चाहिये

और भावी की चिन्ता, कुशल लोग वर्तमान काल के अनुरोध से प्रवृत्त होतेहैं ॥ २ ॥

स्वभावेन हि तुष्यन्ति देवाः सत्पुरुषाः पिता । ज्ञातयः स्नानपानाभ्यां वाक्यदानेन पण्डिताः ॥ ३ ॥

टीका—निश्चय है कि देवता, सत्पुरुष और पिता ये प्रकृति से सन्तुष्ट होतेहैं, पर बन्धु स्नान और पान से और पण्डित प्रिय वचन से ॥ ३ ॥

आयुः कर्म्म च वित्तञ्च विद्या निधनमेव च । पञ्चैतानि च सृज्यन्ते गर्भस्थस्यैव देहिनः ॥ ४ ॥

टीका—आयुर्दाय, कर्म, धन, विद्या और मरण ये पांच जब जीव गर्भ में रहताहै उसी समय सिरजे जातेहैं ॥ ४ ॥

अहो बत विचित्राणि चरितानि महात्मनाम् । लक्ष्मीं तृणाय मन्यन्ते तद्भारेण नमन्ति च ॥ ५ ॥

टीका—आश्चर्य्य है कि महात्माओं के विचित्र

चरित्र हैं। लक्ष्मी को तृण स[illegible]ानतेहैं। यदि मिल जातीहै तो उसके भार से न[illegible] होजातेहैं ॥५॥

यस्य स्नेहो भयं तस्य [illegible]हो दुःखस्य भाजनम्। स्नेहमूलानि दुःखानि तानि त्यक्त्वा वसेत्सुखम् ॥ ६ ॥

टीका—जिसका किसी में प्रीति रहतीहै उसी को भय होताहै। स्नेह ही दुःख का भाजन है और सब दुःख का कारण स्नेह ही है इस कारण उसे छोड़ कर सुखी होना उचित है ॥ ६ ॥

अनागतविधाता च प्रत्युपन्नमतिस्तथा। द्वावेतौ सुखमेधेते यद्भविष्यो विनश्यति ॥ ७ ॥

टीका—आनेवाले दुःख के पहिले से उपाय करनेवाला और जिसकी बुद्धि में विपत्ति आजाने पर शीघ्रही उपाय भी आजाताहै ये दोनों सुख से बढ़तेहैं और जो शोचताहै कि भाग्यवश से जो होनेवाला है अवश्य होगा वह विनष्ट होजाताहै ॥ ७ ॥

राज्ञि धर्मिणि धर्मिष्ठाः पापे पापाः समे समाः । राजानमनुवर्तन्ते यथा राजा तथा प्रजा ॥ ८ ॥

टीका—यदि धर्मात्मा राजा हो तो प्रजा भी धर्मिष्ठ होतीहै । यदि पापी हो तो पापी। सम हो तो सम । सब प्रजा राजा के अनुसार चलतीहै । जैसा राजा है वैसी प्रजा भी होतीहै ॥ ८ ॥

जीवन्तं मृतवन्मन्ये देहिनं धर्मवर्जितम् । मृतो धर्मेण संयुक्तो दीर्घजीवी न संशयः ॥ ९ ॥

टीका—धर्म रहित जीते को मृतक के समान समझताहूं । निश्चय है कि धर्मयुत मरा भी पुरुष चिरंजीवी ही है ॥ ९ ॥

धर्मार्थकाममोक्षाणां यस्यैकोऽपि न विद्यते । अजागलस्तनस्येव तस्य जन्म निरर्थकम् ॥ १० ॥

टीका—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इनमें से जिसको एक भी नहीं रहता । बकरी के गल के स्तन के समान उसका जन्म निरर्थक है ॥ १० ॥

दह्यमानाः सुतीव्रेण [illegible]ः परयशो-ऽग्निना । अशक्तास्तत्पदं [illegible]न्तुं ततो निन्दां प्रकुर्वते ॥ ११ ॥

टीका—दुर्जन दूसरे की कीर्तिरूप दुस्सह अग्नि से जल कर उसके पद को नहीं पाते । इस लिये उसकी निन्दा करने लगतेहैं ॥ ११ ॥

बंधाय विषयासंगो मुक्त्यै निर्विषयं मनः मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः ॥ १२ ॥

टीका—विषय में आसक्त मन बन्ध का हेतु है, विषय से रहित मुक्ति का । मनुष्यों के बन्ध और मोक्ष का कारण मन ही है ॥ १२ ॥

देहाभिमाने गलिते ज्ञानेन परमात्मनि । यत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र समाधयः १३

टीका—परमात्मा के ज्ञान से देह के अभिमान के नाश होजाने पर जहां २ मन जाताहै वहां २ समाधि ही है ॥ १३ ॥

ईप्सितं मनसः सर्वं कस्य सम्पद्यते सु-

खम् । दैवायत्तं यतः सर्वं तस्मात्संतोषमाश्रयेत्॥ १४ ॥

टीका—मन का अभिलषित सब सुख किसको मिलताहै । जिस कारण सब दैव के वश हैं इस से सन्तोष पर भरोसा करना उचित है ॥१४॥

यथा धेनुसहस्रेषु वत्सो गच्छति मातरम् । तथा यच्च कृतं कर्म कर्तारमनुगच्छति ॥ १५ ॥

टीका—जैसे सहस्रों धेनु के रहते बछड़ा माता ही के निकट जाताहै । वैसेही जो कुछ कर्म किया जाताहैं कर्त्ता को मिलताहै ॥ १५ ॥

अनवस्थितकार्यस्य न जने न वने सुखम् । जनो दहति संसर्गाद्वनं संगविवर्जनात् ॥ १६ ॥

टीका—जिसके कार्य की स्थिरता नहीं रहती ॥ वह न जनमें सुख पाताहै न वन में ॥ जन उसको संसर्ग सेजराताहै और वन में संग के त्याग से १६

यथा खात्वा खनित्रेण भुतले वारि कि-

न्दति। तथा गुरुगतां विद्यां शुश्रूषुरधिगच्छति ॥ १७ ॥

टीका—जैसे खनने के साधन से खनके नर पाताल के जल को पाता है। तैसेही गुरुगत विद्या को सेवक शिष्य पाताहै ॥ १७ ॥

कर्मायत्तं फलं पुंसां बुद्धिः कर्मानुसारिणी। तथापि सुधियश्चार्याः सुविचार्यैव कुर्वते ॥ १८ ॥

टीका—यद्यपि फल पुरुष के कर्म के आधीन रहताहै और बुद्धि भी कर्म के अनुसार ही चलतीहै तथापि विवेकी महात्मा लोग विचार ही के काम करतेहैं ॥ १८ ॥

एकाक्षरप्रदातारं यो गुरुं नाभिवन्दते। श्वानयोनिशतं भुक्त्वा चाण्डालेष्वभिजायते ॥ १९ ॥

टीका—जो एक अक्षर भी देनेवाले गुरू की वन्दना नहीं करता वह कुत्ते की सौ योनि को भोग कर चाण्डालों में जन्मताहै ॥ १९ ॥

युगान्ते प्रचलन्मेरुः कल्पान्ते सप्त सागराः। साधवः प्रतिपन्नार्थान्न चलन्ति कदाचन ॥ २० ॥

टीका—युग के अन्तमें सुमेरु चलायमान होताहै और कल्प के अन्त में सातों सागर परंतु साधु लोग स्वीकृत अर्थ से कभी नहीं विचलते ॥ २० ॥

इति वृद्धचाणिक्ये त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

पृथिव्यां त्रीणि रत्नानि ह्यन्नमापः सुभाषितम्। मूढैः पाषाणखण्डेषु रत्नसंख्या विधीयते ॥ १ ॥

टीका—पृथ्वी में जल, अन्न और प्रिय वचन ये तीन ही रत्न हैं। मूढोंने पाषाण के टुकडोंमें रत्न की गिनती कीहै ॥ १ ॥

आत्मापराधवृक्षस्य फलान्येतानि देहिनाम्। दारिद्र्यदुःखरोगानि बन्धनं व्यसनानि च ॥ २ ॥

टीका—जीवों को अपने अपराधरूप वृत्त के दरिद्रता, रोग, दुःख, बन्धन और विपत्ति ये फल होतेहैं ॥ २ ॥

पुनर्वित्तं पुनर्मित्रं पुनर्भार्या पुनर्मही । एतत्सर्वं पुनर्लभ्यं न शरीरं पुनः पुनः ॥३॥

टीका—धन, मित्र, स्त्री, पृथ्वी ये सब फिर २ मिलतेहैं परन्तु शरीर फिर २ नहीं मिलता ॥ ३ ॥

बहुनां चैव सत्वानां समवायो रिपुञ्जयः । वर्षधाराधरो मेघस्तृणैरपि निवार्यते ॥४॥

टीका—निश्चय है कि बहुत जनों का समुदाय शत्रु को जीत लेताहै । तृणसमूह भी वृष्टि की धारा के धरनेवाले मेघ का निवारण करताहै ॥४॥

जले तैलं खले गुह्यं पात्रे दानमानगपि । प्राज्ञे शास्त्रं स्वयं याति विस्तारं वस्तुशक्तितः ॥ ५ ॥

टीका—जल में तेल, दुर्जन में गुप्तवार्त्ता, सुपात्र में दान, बुद्धिमान् में शास्त्र ये थोडे भी हों तो भी वस्तु की शक्ति से आप से आप विस्तार को प्राप्त होजातेहैं ॥ ५ ॥

धर्माख्याने श्मशाने च रोगिणां या मतिर्भवेत् । सा सर्वदैव तिष्ठेच्चेत् को न मुच्येत बन्धनात् ॥ ६ ॥

टीका—धर्मविषयक कथा के समय, श्मशान पर और रोगियों को जो बुद्धि उत्पन्न होतीहै वह यदि सदा रहती तो कौन बन्धन से मुक्त न होता ॥ ६ ॥

उत्पन्नपश्चात्तापस्य बुद्धिर्भवति यादृशी । तादृशी यदि पूर्वं स्यात् कस्य न स्यान्महोदयः ॥ ७ ॥

टीका—निंदित कर्म के करने के पश्चात् पछतानेवाले पुरुष को जैसी बुद्धि उत्पन्न होतीहै । वैसी यदि पहले होती तो किसको बड़ी समृद्धि न होती ॥ ७ ॥

दाने तपसि शौर्ये वा विज्ञाने विनये नये । विस्मयो न हि कर्त्तव्यो बहुरत्ना वसुन्धरा ॥ ८ ॥

टीका—दान में, तप में, शूरता में, विज्ञतामें,

सुशीलता में और नीति में विस्मय नहीं करना चाहिये इस कारण कि पृथ्वी में बहुत रत्न हैं ॥८॥

दूरस्थोऽपि न दूरस्थो यो यस्य मनसि स्थितः । यो यस्य हृदये नास्ति समीपस्थोऽपि दूरतः ॥ ९ ॥

टीका—जो जिसके हृदय में रहताहै । वह दूर भी हो तौ भी वह दूर नहीं । जो जिसके मन में नहीं है वह समीप भी हो तौ भी वह दूर है ॥९॥

यस्माच्च प्रियमिच्छेत्तु तस्य ब्रूयात्सदा प्रियम् । व्याधो मृगवधं गन्तुं गीतं गायति सुस्वरम् ॥ १० ॥

टीका—जिससे प्रिय की वाञ्छा हो सदा उससे प्रिय बोलना उचित है । व्याध मृग के वध के निमित्त मधुर स्वर से गीत गाताहै ॥ १० ॥

अत्यासन्ना विनाशाय दूरस्था न फलप्रदाः । सेव्यतां मध्यभागेन राजा वह्निर्गुरुः स्त्रियः ॥ ११॥

टीका—अत्यन्त निकट रहने पर विनाश के हेतु

होतेहैं, दूर रहने से फल नहीं देते। इस हेतु राजा, अग्नि, गुरु और स्त्री इनको मध्यावस्थासे सेवना चाहिये ॥ ११ ॥

अग्निरापः स्त्रियो मूर्खसर्पौ राजकुलानि च। नित्यं यत्नेन सेव्यानि सद्यः प्राणहराणि षट् ॥ १२ ॥

टीका—आग, जल, स्त्री, मूर्ख, सांप और राजा के कुल ये सदा सावधानता से सेवने के योग्य हैं। ये छः शीघ्र प्राण के हरनेवाले हैं ॥१२॥

स जीवति गुणा यस्य यस्य धर्मः स जीवति। गुणधर्मविहीनस्य जीवितं निष्प्रयोजनम् ॥ १३ ॥

टीका—वही जीताहै जिसके गुण हैं। और वही जीताहै जिसके धर्म है। गुण और धर्म से हीन पुरुषका जीना व्यर्थ है ॥ १३ ॥

यदीच्छसि वशीकर्तुं जगदेकेन कर्मणा। पुरा पञ्च दशास्येभ्यो गां चरंतीं निवारय ॥ १४ ॥

टीका—जो एक ही कर्म्म से जगत् को वश किया चाहतेहो तो पहिले पंद्रहों के मुख से मन को निवारण करो॥१४॥ तात्पर्य्य यह है कि आंख, कान, नाक, जीभ त्वचा ये पांचो ज्ञानेन्द्रिय हैं। मुख, हाथ, पांव, लिंग, गुदा ये पांच कर्म्मेन्द्रिय हैं। रूप, शब्द, रस, गन्ध, स्पर्श ये पांच ज्ञानेन्द्रियों के विषय हैं इन पन्द्रहों से मन को निवारण करना उचित है॥ १४ ॥

प्रस्तावसदृशं वाक्यं प्रभावसदृशं प्रियम्। आत्मशक्तिसमं कोपं यो जानाति स पण्डितः॥ १५॥

टीका—प्रसंग के योग्य वाक्य, प्रकृति के सदृश प्रिय और अपनी शक्ति के अनुसार कोप को जो जानताहै वह बुद्धिमान् है॥ १५॥

एक एव पदार्थस्तु त्रिधा भवति वीक्षितः। कुणपं कामिनी मांसं योगिभिः कामिभिः श्वभिः॥ १६॥

टीका—एक ही देह, रूप, वस्तु तीन प्रकार की देख पडतीहै। योगी लोग उससे अति निंदित

मृतक रूपसे, कामी पुरुष कान्तारूप से, कुत्ते मांसरूपसे देखतेहैं ॥ १६ ॥

सुसिद्धमौषधं धर्मं गृहच्छिद्रं च मैथुनम् । कुभुक्तं कुश्रुतं चैव मतिमान्न प्रकाशयेत् ॥ १७ ॥

टीका—सिद्ध औषध, धर्म, अपने घर का दोष, मैथुन, कुअन्न का भोजन, निंदित वचन इनका प्रकाश करना बुद्धिमान को उचित नहीं है ॥१७॥

तावन्मानेन नीयन्ते कोकिलैश्चैव वासराः । यावत्सर्वजनानन्ददायिनी वाक्प्रवर्त्तते ॥ १८ ॥

टीका—तब लौं कोकिल मौनसाधन से दिन बिताताहै जब लौं सब जनों को आनन्द देनेवाली वाणी प्रारम्भ नहीं करती ॥ १८ ॥

धर्मं धनञ्च धान्यं च गुरोर्वचनमौषधम् । सुगृहीतं च कर्त्तव्यमन्यथा तु न जीवति ॥ १६ ॥

टीका—धर्म, धन, धान्य, गुरु का वचन और औ-

अथ यदि ये सुग्रहीत हों तो इनको भली भांतिसे करना चाहिये जो ऐसा नहीं करता वही नहीं जीता ॥ १६ ॥

त्यज दुर्जनसंसर्गं भज साधुसमागमम् । कुरु पुण्यमहोरात्रं स्मर नित्यमनित्यतः ॥ २० ॥

टीका—खल का संग छोड़, साधु की संगति का स्वीकार कर, दिन राति पुण्य कियाकर और ईश्वर का नित्य स्मरण कर इस कारण कि संसार अनित्य है ॥ २० ॥

इति वृद्धचाणक्ये चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

यस्य चित्तं द्रवीभूतं कृपया सर्वजन्तुषु । तस्य ज्ञानेन मोक्षेण किं जटाभस्मलेपनैः ॥ १ ॥

टीका—जिसका चित्त सब प्राणियों पर दया से पिघल जाता है । उसको ज्ञान से, मोक्ष से, जटा से और विभूति के लेप से क्या ॥ १ ॥

एकमेकाक्षरं यस्तु गुरुः शिष्यं प्रबोधयेत् । पृथिव्यां नास्ति तद्द्रव्यं यद्दत्वा चानृणी भवेत् ॥ २ ॥

टीका—जो गुरु शिष्य को एक ही अक्षर का उपदेश करता है । पृथ्वी में ऐसा द्रव्य नहीं है जिसको देकर शिष्य उत्तीर्ण हो ॥ २ ॥

खलानां कराटकानां च द्विविधैव प्रतिक्रिया । उपानहास्यभंगो वा दूरतो वा विसर्जनम् ॥ ३ ॥

टीका—खल और कांटा इनका दो ही प्रकार का उपाय है । जूता से मुख का तोड़ना वा दूरसे त्याग ॥ ३ ॥

कुचैलिनं दन्तमलोपधारिणं बह्वाशिनं निष्ठुरभाषिणं च । सूर्योदये चास्तमिते शयानं विमुञ्चति श्रीर्यदि चक्रपाणिः॥४॥

टीका—मलिन वस्त्रवाले को, जो दांतों के मल को दूर नहीं करता उसको, बहुत भोजन करनेवाले को, कटुभाषी को, सूर्य्य के उदय और अस्त के

समय में सोनेवाले को लक्ष्मी छोड़ देतीहै चाहै वह विष्णु भी हो ॥ ४ ॥

त्यजंति मित्राणि धनैर्विहीनं दाराश्च भृत्याश्च सुहृज्जनाश्च। तं चार्थवंतं पुनराश्रयंते ह्यर्थो हि लोके पुरुषस्य बन्धुः॥५॥

टीका—मित्र, स्त्री, सेवक, बन्धु ये धनहीन पुरुष को छोड देतेहैं। वही पुरुष यदि धनी होजाताहै फिर उसीका आश्रय करतेहैं। धन ही लोक में बन्धु है ॥ ५ ॥

अन्यायोपार्जितं द्रव्यं दश वर्षाणि तिष्ठति। प्राप्ते एकादशे वर्षे समूलञ्च विनश्यति ॥ ६ ॥

टीका—अनीति से अर्जित धन दश वर्ष पर्यंत ठहरताहै। ग्यारहवें वर्ष के प्राप्त होने पर मूलसहित नष्ट होजाताहै ॥ ६ ॥

अयुक्तं स्वामिनो युक्तं युक्तं नीचस्य दूषणम्। अमृतं राहवे मृत्युर्विषं शंकरभूषणम् ॥ ७ ॥

टीका—अयोग्य भी वस्तु समर्थ को योग्य होतीहै और योग्य भी दुर्जन को दूषण । अमृत राहु को मृत्यु दिया । विष भी शंकर को भूषण हुआ ॥ ७ ॥

तद्भोजनं यद्द्विजभुक्तशेषं तत्सौहृदं यत्क्रियते परस्मिन् । सा प्राज्ञता या न करोति पापं दम्भं विना यः क्रियते स धर्मः ॥ ८ ॥

टीका—वही भोजन है जो ब्राह्मण के भोजन से बचा है वही मित्रता है जो दूसरे में कीजातीहै । वही बुद्धिमानी है जो पाप नहीं करती और जो विना दम्भ के किया जाताहै वही धर्म है ॥ ८ ॥

मणिर्लुठति पादाग्रे काचः शिरसि धार्यते । क्रयविक्रयवेलायां काचः काचो मणिर्मणिः ॥ ९ ॥

टीका—मणि पांव के आगे लोटती हो काच शिरपर भी रक्खा हो परन्तु क्रय विक्रय के समय काच काच ही रहता और मणि मणि ही है ॥९॥

अनन्तशास्त्रं बहुलाश्च विद्या ह्यल्पश्च कालो बहुविघ्नता च । यत्सारभूतं तदुपासनीयं हंसो यथा क्षीरमिवाम्बुमध्यात् ॥ १० ॥

टीका—शास्त्र अनन्त हैं और विद्या बहुत, काल थोडा है और विघ्न बहुत, इस कारण जो सार है उसको ले लेना उचित है । जैसे हंस जल के मध्य से दूध को ले लेताहै ॥ १० ॥

दूरागतं पथि श्रांतं वृथा च गृहमागतम् । अनर्चयित्वा यो भुंक्ते स वै चाण्डाल उच्यते ॥ ११ ॥

टीका—दूर से आये को और निरर्थक गृह पर आये को विना पूजे जो खाताहै वह चाण्डाल ही गिना जाताहै ॥ ११ ॥

पठन्ति चतुरो वेदान् धर्मशास्त्राण्यनेकशः । आत्मानं नैव जानन्ति दर्वी पाकरसं यथा ॥ १२ ॥

टीका—चारों वेद और अनेक धर्मशास्त्र पढ़तेहैं

परन्तु आत्मा को नहीं जानते। जैसे कलछी पाक के रस को ॥ १२ ॥

धन्या द्विजमयी नौका विपरीता भवार्णवे। तरन्त्यधोगताः सर्वे चोपरिस्थाः पतन्त्यधः ॥ १३ ॥

टीका—यह ब्राह्मणरूप नाव धन्य है संसाररूप समुद्र में इनकी उलटी ही रीति है। इसके नीचे रहनेवाले सब तरतेहैं और ऊपर रहनेवाले नीचे गिरतेहैं। अर्थात् ब्राह्मण से जो नम्र रहताहै वह तर जाता है और जो नम्र नहीं रहता है वह नरक में गिरताहै ॥ १३ ॥

अयममृतनिधानं नायकोऽप्योषधीनाममृतमयशरीरः कान्तियुक्तोऽपि चन्द्रः। भवति विगतरश्मिर्मंडलं प्राप्य भानोः परसदननिविष्टः को लघुत्वं न याति १४

टीका—अमृत का घर, औषधियों का अधिपति, जिसका शरीर अमृतमय है और शोभायुत भी चन्द्रमा सूर्य के मण्डलमें जा कर निस्तेज होजाता है। दूसरेके घरमें बैठ कर कौन लघुता नहीं पाता१४

अलिरयं नलिनीदलमध्यगः कमलिनीमकरंदमदालसः । विधिवशात्परदेशमुपागतः कुटजपुष्परसं बहु मन्यते ॥१५॥

टीका—यह भवँरा जब कमलिनी के पत्तों के मध्य था तब कमलिनी के फूल के रस से आलसी बना रहताथा अब दैववश से परदेश में आकर कौरया के फूल को बहुत समझताहै ॥ १५ ॥

पीतः क्रुद्धेन तातश्चरणतलहतो वल्लभो येन रोषादावाल्याद्विप्रवर्यैः स्ववदनविवरे धार्यते वैरिणी मे । गेहं मे छेदयन्ति प्रतिदिवसमुमाकांतपूजानिमित्तं तस्मात्खिन्ना सदाहं द्विजकुलनिलयं नाथ! युक्तं त्यजामि ॥ १६ ॥

टीका—जिसने रुष्ट होकर मेरे पिता को पी डाला और जिसने क्रोध के मारे पांव से मेरे कान्त को मारा जो श्रेष्ठ ब्राह्मण बैठे सदा लड़कपन से लेकर मुखविवर में मेरी वैरिणी को रखतेहैं और प्रतिदिन पार्वती के पति की पूजा के निमित्त मेरे गृह

को काटतेहैं हे नाथ इससे खेद पाकर ब्राह्मणों के घर कोसदा छोड़ेरहतीहूं ॥ १६ ॥

बन्धनानि खलु सन्ति बहूनि प्रेमरज्जुकृतबन्धनमन्यत् । दारुभेदनिपुणोऽपि षडंघ्रिर्निष्क्रियो भवति पङ्कजकोशे ॥१७॥

टीका—बन्धन तो बहुत हैं परन्तु प्रीति की रस्सी का बन्धन और ही है। काठ के छेदने में कुशल भी भवँरा कमल के कोश में निर्व्यापार होजाता है ॥ १७ ॥

छिन्नोऽपि चन्दनतरुर्न जहाति गन्धं वृद्धोऽपि वारणपतिर्न जहाति लीलाम् । यन्त्रार्पितो मधुरतां न जहाति चेक्षुः क्षीणोऽपि न त्यजति शीलगुणान्कुलीनः ॥ १८ ॥

टीका—काटा चन्दन का वृक्ष गन्ध को त्याग नहीं देता। बूढ़ा भी गजपति विलास को नहीं छोड़ता। कोल्हू में पेरी भी ऊख मधुरता नहीं छोड़ती। दरिद्र भी कुलीन सुशीलता आदि गुणों का त्याग नहीं करता ॥ १८ ॥

उर्व्यां कोऽपि महीधरो लघुतरो दोर्भ्यां धृतो लीलया तेन त्वं दिवि भूतले च सततं गोवर्द्धनो गीयसे। त्वां त्रैलोक्यधरं वहामि कुचयोरग्रेण तद्गण्यते किं वा केशवभाषणेन बहुना पुण्यैर्यशो लभ्यते॥ १६॥

टीका—पृथ्वीपर किसी अत्यन्त हलके पर्वत को अनायास से बाहुओं के ऊपर धारण किया जिससे आप सदा स्वर्ग और पृथ्वीतल में गोवर्धन कहलाते हैं तीनों लोकों के धरने वाले आप को केवल कुचों के अग्र भाग में धारण करती हूं यह कुछ भी नहीं गिनाजाता है हे केशव बहुत कहने से क्या पुण्यों से यश मिलताहै॥ १६॥

इति वृद्धचाणिक्ये पञ्चदशोऽध्यायः॥ १५॥

न ध्यातं पदमीश्वरस्य विधिवत्संसारविच्छित्तये स्वर्गद्वारकपाटपाटनपटुर्धर्मोऽपि नोपार्जितः। नारीपीनपयोधरोरुयुगलं स्वप्नेऽपि नालिङ्गितं मातुः केवलमेव यौवनवनच्छेदे कुठारा वयम्॥ १॥

टीका—संसार में मुक्त होनेके लिये विधिसे ईश्वर के पद का ध्यान मुझसे न हुआ; स्वर्गद्वार के फाटक के तोड़ने में समर्थ धर्म का भी अर्जन न किया और स्त्री के दोनों पीनस्तन और जंघों का आलिंगन स्वप्न में भी न किया। मैं माता के युवापनरूप वृक्ष के केवल काटने में कुल्हाड़ी हुआ ॥ १ ॥

जल्पन्ति सार्द्धमन्येन पश्यन्त्यन्यं सविभ्रमाः। हृदये चिन्तयन्त्यन्यं न स्त्रीणामेकतो रतिः ॥ २ ॥

टीका—भाषण दूसरे के साथ करती हैं, दूसरे को विलास से देखती हैं और हृदय में दूसरे ही की चिन्ता करती हैं। स्त्रियों की प्रीति एक में नहीं रहती २

यो मोहान्मन्यते मूढो रक्तेयं मयि कामिनी। स तस्या वशगो भूत्वा नृत्येत्क्रीडाशकुन्तवत् ॥ ३ ॥

टीका—जो मूर्ख अविवेक से समझता है कि यह कामिनी मेरे ऊपर प्रेम करती है वह उसके वश होंकर खेल के पक्षी के समान नाचा करता है ॥ ३ ॥

कोऽर्थान् प्राप्य न गर्वितो विषयिणः कस्यापदोऽस्तंगताः स्त्रीभिः कस्य न खण्डितं भुवि मनः को नाम राजप्रियः । कः कालस्य न गोचरत्वमगमत्कोऽर्थी गतो गौरवं को वा दुर्जनदुर्गुणेषु पतितः क्षेमेण यातः पथि ॥ ४ ॥

टीका—धन पाकर गर्वी कौन न हुआ? किस विषयी की विपत्ति नष्ट हुई? पृथ्वी में किसके मन को स्त्रियों ने खण्डित न किया? राजा को प्रिय कौन हुआ? किस याचक ने गुरुता पाई? दुष्ट की दुष्टता में पड़कर संसार के पंथ में कुशलता से कौन गया ॥४॥

न निर्मिता केन न दृष्टपूर्वा न श्रूयते हेममयी कुरंगी । तथापि तृष्णा रघुनन्दनस्य विनाशकाले विपरीतबुद्धिः ॥५॥

टीका—सोने की मृगी न पहले किसी ने रची, न देखी और न किसी को सुन पड़ती है तो भी रघुनंदन की तृष्णा उस पर हुई। विनाश के समय बुद्धि विपरीत होजाती है ॥ ५ ॥

गुणैरुत्तमतां यान्ति नोच्चैरासनसं-स्थिताः। प्रासादशिखरस्थोऽपि काकः किं गरुडायते ॥ ६ ॥

टीका—प्राणी गुणों से उत्तमता पाते हैं ऊंचे आसन पर बैठ कर नहीं। कोठे के ऊपर के भाग में बैठा कौवा क्या गरुड़ होजाता है ॥ ६ ॥

गुणाः सर्वत्र पूज्यन्ते न महत्योऽपि सम्पदः। पूर्णेन्दुः किं तथा वंद्यो निष्कलंको यथा कृशः ॥ ७ ॥

टीका—सब स्थान में गुण पूजे जाते हैं बड़ी सम्पति नहीं। पूर्णिमा का पूर्ण भी चन्द्रमा क्या वैसा वन्दित होता है जैसा विना कलंक के द्वितीया का दुर्बल भी ॥ ७ ॥

परमोक्तगुणो यस्तु निर्गुणोऽपि गुणी भवेत्। इन्द्रोऽपि लघुतां याति स्वयं प्रख्यापितैर्गुणैः ॥ ८ ॥

टीका—जिसके गुणों का दूसरे लोग वर्णन करते हैं वह निर्गुण भी हो तो गुणवान कहा जाता है। इ-

न्द्र भी यदि अपने गुणों की आप प्रशंसा करे तो उनसे लघुता पाता है ॥ ८ ॥

विवेकिनमनुप्राप्ता गुणा यान्ति मनोज्ञताम् । सुतरां रत्नमाभाति चामीकरनियोजितम् ॥ ९ ॥

टीका—विवेकी को पाकर गुण सुन्दरता पाते हैं। जब रत्न सोना में जड़ाजाता है तब अत्यन्त सुन्दर देख पड़ता है ॥ ९ ॥

गुणैः सर्वज्ञतुल्योऽपि सीदत्येको निराश्रयः । अनर्घ्यमपि माणिक्यं हेमाश्रयमपेक्षते ॥ १० ॥

टीका—गुणों से ईश्वर के सदृश भी निरालम्ब अकेला पुरुष दुःख पाता है। अमोल भी माणिक्य सोना के आलम्ब की अर्थात् उस में जड़े जाने की अपेक्षा करता है ॥ १० ॥

अतिक्लेशेन ये चार्था धर्मस्यातिक्रमेण तु । शत्रूणां प्रणिपातेन ये चार्था मा भवन्तु मे ॥ ११ ॥

टीका—अत्यन्त पीड़ा से धर्म के त्याग से और वैरियों की प्रणति से जो धन होते हैं सो धन मुझको नहीं ॥ ११ ॥

किं तया क्रियते लक्ष्म्या या वधूरिव केवला । यातु वेश्येव सामान्या पथिकै-रपि भुज्यते ॥१२॥

टीका—उस सम्पत्ति से लोग क्या कर सकते हैं जो वधू के समान असाधारण है। जो वेश्या के समान सर्व साधारण हो वह पथिकों के भी भोग में आस-क्ती है ॥ १२ ॥

धनेषु जीवितव्येषु स्त्रीषु चाहारकर्मसु। अतृप्ताः प्राणिनः सर्वे याता यास्यन्ति यान्ति च ॥१३॥

टीका—धन में, जीवन में, स्त्रियों में और भोजन में अतृप्त होकर सब प्राणी गये और जायेंगे ॥ १३ ॥

क्षीयन्ते सर्वदानानि यज्ञहोमबलि-क्रियाः । न क्षीयते पात्रदानमभयं सर्व-देहिनाम्॥ १४ ॥

टीका—सब दान ,यज्ञ, बलि ये सब नष्ट होजातेहैं सत्पात्र को दान और सब जीवों को अभय दान क्षीण नहीं होते ॥ १४ ॥

तृणं लघु तृणात्तूलं तूलादपि च याचकः । वायुना किं न नीतोऽसौ मामयं याचयिष्यति ॥ १५ ॥

टीका—तृण सब से लघु होता है तृण से रुई हलकी होती है । रुई से भी याचक, इसे वायु क्यों नहीं उड़ालेजाती? वह समझती है कि यह मुझसे भी मांगेगा ॥ १५ ॥

वरं प्राणपरित्यागो मानभङ्गेन जीवनात् । प्राणत्यागे क्षणं दुःखं मानभंगे दिने दिने ॥ १६ ॥

टीका—मान भंग पूर्वक जीने से प्राण का त्याग श्रेष्ठ है । प्राण त्याग के समय क्षण भर दुःख होता है। मान नाश के होने पर दिन दिन ॥ १६ ॥

प्रियवाक्यप्रदानेन सर्वे तुष्यन्ति जन्तवः । तस्मात्तदेव वक्तव्यं वचने किं दरिद्रता ॥ १७ ॥

टीका—मधुर वचन के बोलने से सब जीव संतुष्ट होते हैं। इस कारण उसी का बोलना योग्य है। वचन में दरिद्रता क्या॥ १७॥

संसारकूपवृक्षस्य द्वे फले अमृतोपमे। सुभाषितञ्च सुस्वादु संगतिः सज्जने जने॥ १८॥

टीका—संसाररूप कूट वृक्ष के दोही फल हैं रसीला प्रिय वचन और सज्जन के साथ संगति॥ १८॥

जन्म जन्म यदभ्यस्तं दानमध्ययनं तपः। तेनैवाभ्यासयोगेन देही चाभ्यस्यते पुनः॥ १९॥

टीका—जो जन्म जन्म दान, पढ़ना, तप इनका अभ्यास किया जाता है उस अभ्यास के योग से देही अभ्यास फिर २ करता है॥ १९॥

पुस्तकेषु च या विद्या परहस्तेषु यद्धनम्। उत्पन्नेषु च कार्येषु न सा विद्या न तद्धनम्॥ २०॥

टीका—जो विद्या पुस्तकों हीं पर रहती है और

दूसरों के हाथों में जो धन रहता है। काम पड़ जाने पर न वह विद्या है न वह धन है ॥ २ ॥

इति वृद्धचाणिक्ये षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

पुस्तकप्रत्ययाधीतं नाधीतं गुरुसन्निधौ। सभामध्ये न शोभन्ते जारगर्भा इव स्त्रियः ॥ १ ॥

टीका—जिन्हों ने केवल पुस्तक की प्रति से पढ़ा गुरु के निकट न पढ़ा। वे सभा के बीच व्यभिचार से गर्भवाली स्त्रियों के समान नहीं शोभते ॥ १ ॥

कृते प्रतिकृतिं कुर्याद्धिंसने प्रतिहिंसनम्। तत्र दोषो न पतति दुष्टे दुष्टं समाचरेत् ॥ २ ॥

टीका—उपकार करने पर प्रत्युपकार करना चाहिये और मारने पर मारना इसमें अपराध नहीं होता। इस कारण कि दुष्टता करने पर दुष्टता का आचरण करना उचित होता है ॥ २ ॥

यद्दूरं यद्दुराराध्यं यच्च दूरे व्यव-

स्थितम् । तत्सर्वं तपसा साध्यं तपो हि दुरतिक्रमम् ॥ ३ ॥

टीका—जो दूर है, जिसकी आराधना नहीं होसकी और जो दूर वर्तमान हैं वे सब तप से सिद्ध हो सक्ते हैं । इस कारण सब से प्रबल तप है ॥ ३ ॥

लोभश्चेदगुणेन किं पिशुनता यद्यस्ति किं पातकैः सत्यं चेत्तपसा च किं शुचिमनो यद्यस्ति तीर्थेन किम् । सौजन्यं यदि किं गुणैः सुमहिमा यद्यस्ति किं मण्डनैः सद्विद्या यदि किं धनैरपयशो यद्यस्ति किं मृत्युना ॥ ४ ॥

टीका—यदि लोभ है तो दूसरे दोष से क्या, यदि लुतुराई है तो और पापों से क्या, यदि सत्यता हो तो तप से क्या, यदि मन स्वच्छ है तो तीर्थ से क्या, यदि सज्जनता है तो दूसरे गुणों से क्या, यदि महिमा है तो भूषणों से क्या, यदि अच्छी विद्या है तो धनसे क्या, और यदि अपयश है तो मृत्यु से क्या ॥ ४ ॥

पिता रत्नाकरो यस्य लक्ष्मीर्यस्य सहो-

दरी । शङ्खो भिक्षाटनं कुर्यान्न दत्तमुपतिष्ठते ॥ ५ ॥

टीका—जिसका पिता रत्नों की खान समुद्र है। लक्ष्मी जिसकी बहिन, ऐसा शङ्ख भीख मांगताहै। सच है विना दिये नहीं मिलता ॥ ५ ॥

अशक्तस्तु भवेत्साधुर्ब्रह्मचारी च निर्धनः । व्याधिष्ठो देवभक्तश्च वृद्धा नारी पतिव्रता ॥ ६ ॥

टीका—शक्तिहीन साधु होताहै, निर्धन ब्रह्मचारी, रोगग्रस्त देवता का भक्त होता है और वृद्ध स्त्री पतिव्रता ॥ ६ ॥

नान्नोदकसमं दानं न तिथिर्द्वादशी समा । न गायत्र्याः परो मन्त्रो न मातुर्दैवतं परम् ॥ ७ ॥

टीका—अन्न जल के समान कोई दान नहीं है। न द्वादशी के समान तिथि। गायत्री से बढ़कर कोई मन्त्र नहीं है। न माता से बढ़कर कोई देवता ॥७॥

तक्षकस्य विषं दन्ते मक्षिकाया विषं शिरे । वृश्चिकस्य विषं पुच्छे सर्वांगे दुर्जनो विषम् ॥ ८ ॥

टीका—सांप के दांत में विष रहता है । मक्खी के शिर में विष । बिच्छू की पूछं में विष है । सब अंगों में दुर्जन विष ही से भरा रहताहै ॥ ८ ॥

पत्युराज्ञां विना नारी उपोष्य व्रतचारिणी । आयुष्यं हरते भर्तुः सा नारी नरकं व्रजेत् ॥ ९ ॥

टीका—पति की आज्ञा विना उपवास व्रत करने वाली स्त्री स्वामी की आयु को हरती है । और वह स्त्री आप नरक में जाती है ॥ ९

न दानैः शुध्यते नारी नोपवासशतैरपि । न तीर्थसेवया तद्वद्भर्तुः पादोदकैर्यथा ॥ ०१ ॥

टीका—न दानों से, न सैकड़ों उपवासों से, न तीर्थ के सेवन से स्त्री वैसी शुद्ध होती है जैसी स्वामी के चरणोदक से ॥ १० ॥

पादशेषं पीतशेषं सन्ध्याशेषं तथैव च। श्वानमूत्रसमं तोयं पीत्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥ ११ ॥

टीका—पांव धोने से जो जल का शेष रहजाता है, पीने से जो बचजाता है, और संध्या करने पर जो अवशिष्ट जल, सो कुत्ते के मूत्र के समान है। इसको पीकर चान्द्रायण का व्रत करना चाहिये ॥११

दानेन पाणिर्न तु कंकणेन स्नानेन शुद्धिर्न तु चन्दनेन। मानेन तृप्तिर्न-तु भोजनेन ज्ञानेन मुक्तिर्न तु मण्ड-नेन ॥ १२ ॥

टीका—दान से हाथ शोभता है कंकण से नहीं। स्नान से शरीर शुद्ध होता है चन्दन से नहीं। आदर से तृप्ति होतीहै भोजन से नहीं। ज्ञान से मुक्ति होती है छापा तिलकादि भूषण से नहीं ॥ १२ ॥

नापितस्य गृहे क्षौरं पाषाणे गन्धलेप-नम्। आत्मरूपं जले पश्यन्शक्रस्यापि-श्रियं हरेत् ॥ १३ ॥

टीका—नाई के घर पर बाल बनवाने वाला, पत्थर से लेकर चन्दन लेपन करने वाला, अपने रूप को पानी में देखने वाला, इन्द्र भी हो तो उसकी लक्ष्मी को ये हर लेतेहैं ॥ १३ ॥

सद्यः प्रज्ञाहरा तुण्डी सद्यः प्रज्ञाकरी वचा । सद्यः शक्तिहरा नारी सद्यः शक्तिकरं पयः ॥ १४ ॥

टीका—कुंदुरू शीघ्र ही बुद्धि हर लेता है और वच झटपट बुद्धि देती है । स्त्री तुरन्त ही शक्ति हरलेती है, दूध शीघ्र ही बल करदेता है ॥ १४ ॥

परोपकरणं येषां जागर्ति हृदये सताम् । नश्यन्ति विपदस्तेषां सम्पदः स्युः पदे पदे ॥ १५ ॥

टीका—जिन सज्जनों के हृदय में परोपकार जागरूक है उनकी विपत्ति नष्ट होजाती है और पद२ में सम्पत्ति होती है ॥ १५ ॥

यदि रामा यदि रामा यदि तनयो विनयगुणोपेतः । तनये तनयोत्पत्ति सुरवरनगरे किमाधिक्यम् ॥ १६ ॥

टीका—यदि कान्ता है यदि लक्ष्मी भी वर्त्तमान है यदि पुत्र सुशीलतागुण से युक्त है और पुत्र के पुत्र की उत्पत्ति हुई हो फिर देवलोक में इस से अधिक क्या है ॥ १६ ॥

आहारनिद्राभयमैथुनानि समानि चैतानि नृणां पशूनाम्। ज्ञानं नराणामधिको विशेषो ज्ञानेन हीनाः पशुभिः समानाः ॥ १७ ॥

टीका—भोजन, निद्रा, भय, मैथुन ये मनुष्य और पशुओं के समान ही हैं मनुष्यों के केवल ज्ञान अधिक विशेष है ज्ञान से रहित नर पशु के समान हैं ॥ १७ ॥

दानार्थिनो मधुकरा यदि कर्णतालैः दूरीकृता करिवरेण मदान्धबुद्ध्या। तस्यैव गण्डयुगमण्डनहानिरेषा भृंगाः पुनर्विकचपद्मवने वसन्ति ॥ १८ ॥

टीका— यदि मदान्ध गजराज ने गजमद के अर्थी भौंरों को मदान्धता से कर्ण के तालों से

किया तो यह उसीके दोनों गराडस्थल की शोभा की हानि भई भौंरे फिर विकसित कमलवन में बसते हैं ॥ १८ ॥ तात्पर्य्य यह है कि यदि किसी निर्गुण मदान्ध राजा वा धनी के निकट कोई गुणी जा पड़े उस समय मदान्धों को गुणी का आदर न करना मानों अपनी लक्ष्मी की शोभा की हानि करनी है काल निरवधि है और पृथ्वी अनन्त है गुणी का आदर कहीं न कहीं किसी न किसी समय होहीगा ॥ १८ ॥

राजा वेश्या यमश्चाग्निस्तस्करो बालयाचकौ। परदुःखं न जानन्ति चाष्टमो ग्रामकराटकः ॥ १६ ॥

टीका—राजा, वेश्या, यम, अग्नि, चोर, बालक, याचक और आठवां ग्रामकराटक अर्थात् ग्रामनिवासियों को पीड़ा देकर अपना निर्वाह करनेवाला ये दूसरे के दुःख को नहीं जानते ॥ १६ ॥

अधः पश्यसि किं बाले पतितं तव किं भुवि। रे रे मूर्ख न जानासि गतं तारुगयमौक्तिकम् ॥ २० ॥

टीका—हे बाले! नीचे को क्या देखती हो तुम्हारा पृथ्वी पर क्या गिरपड़ा है। तब स्त्रीने कहा रे रे मूर्ख नहीं जानता कि मेरा तरुणाता रूप मोती चलागया ॥ २० ॥

व्यालाश्रयापि विफलापि सकंटकापि
वक्रापि पङ्किलभवापि दुरासदापि ॥
गन्धेन बन्धुरसि केतकि सर्वजन्तोः
एकोगुणः खलु निहन्ति समस्तदोषान् २१

इति श्रीवृद्धचाणिक्यदर्पणे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

टीका-हे केतकी यद्यपि तू सांपों का घर है, निष्फल है, तुझ में कांटे भी हैं, टेढ़ी है, कीचड़ से तेरी उत्पत्ति है और तू दुःखसे मिलती भी है तथापि एक गन्ध गुण से सब प्राणियों को बन्धु होरही है। निश्चय है कि एक भी गुण दोषों को नाश करदेताहै ॥ २१ ॥

इति भाषाटीकासहितं वृद्धचाणिक्यनीतिदर्पणः समाप्तः ॥

———

शुद्धिपत्रम्

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३	१०	लक्ष्मी भी	लक्ष्मी ही
३	११	चली जाती	चली जावै तो
३	१२	सन्मानो	सम्मानो
४	१३	चापत्तिकाले तु	चापत्तिकालेषु
५	१५	बुद्धमान्	बुद्धिमान्
८	४	पिताकी	पिताके
८	१०	सन्मुख	सम्मुख
१४	२	बनि आई	बनियांपन
१४	६	मिला के	मिला
१५	६	कन्यको	कन्याको
१६	१३	कांटेको	कांटे से
१८	१०	प्रियः प्रियवादिनाम्	परः प्रियवादिनाम्
१८	१३	प्रिय वादियोंसे प्रिय	प्रियवादियों के शत्रु
१९	८	कुपुत्रेण कुलं यया	यथा चन्द्रेण शर्वरी
२०	८	पलाति	प्रयाति
२१	१५	सुकुलम्	सुकृतं कुलम्
२३	७	सो सैकड़ों	सैकड़ों
२३	१३	उसे	परंतु उस से
३०	११	वराङ्गनाः	वराङ्गनाः
३१	१८	शान्तं	शान्ता
३५	६	स्थिर ह	स्थिर है
३८	८	उसीका	उसीके
३८	८	पश्चैते	पश्चैता
४२	१०	इसे सिंहसे एक	यह एक सिंहसे
४५	१४	श्चेत च	श्चेतश्च
४६	१०	और अग्नि	और ब्राह्मण अग्नि

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४६	१८	न और	और न
४७	१८	होतेहैं	होतेहैं
४६	५	पुनस्त्यजन्तः	पुनस्त्यजन्ते
५०	११	रहतेहैं	रहतेहैं
५१	१५	विवेकितः	विवेकतः
५२	७	ताम्बुलं	ताम्बूलं
५२	१६	खायजाताहै	खाजाताहै
५३	१२	चण्डलानां	चाण्डालानं.
५४	६	भैषजं	भेषजं
५५	६	दान	दानं
५८	३	देवैरपि स	देवैरपि च
५८	१६	फूल	टेसूके फूल
५६	१	मूखार्श्चाचर	मूर्खाश्चाचर
६०	१३	बीमार	बिमार
६४	१७	आत्माप्रप्रहारी	आत्मप्रहारी
६५	६	लेतहैं	लेतेहैं
६६	६	कर्त्तुमपायो	कर्त्तुमुपायो
६६	१४	राजऽद्वेषा	राजद्वेषा
७२	८	यदुपति !	हे यदुपति !
७२	१२	याथा	यथा
७२	१६	देवतओंकी	देवताओंकी
७७	७	कोतुके	कौतुके
८०	१४	हमारे लोगाका	हम लोगोंका
८१	१४	आर्तेषु	आर्त्तेषु
८२	१७	अन्पार्जित	अन्यायार्जित
८४	१४	खलसंगता	खलसंगतः
८४	१५	न	न हि

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
८८	२	नार्यःश्चाहं	नारी चाहं
६४	१०	प्रत्युपन्न	प्रत्युत्पन्न
६५	१४	धमार्थ	धर्मार्थ
६७	१८	भुतले	भूतले
६८	४	तेसेही	वैसेही
६६	१	प्रचलन्	प्रचलेन्
६६	६	पाषणखण्डेषु	पाषाणखण्डेषु
६६	१५	दुखः रोगानि	दुःखरोगाणि
१०४	१६	उस से	उसे
१०६	५	नित्यमनित्यतः	नित्यमनित्यताम्
१०६	८।६	ईश्वरका नित्य स्मरण कर इस कारण कि संसार अनित्य है	नित्य स्मरण कर कि संसार अनित्य है
११०	१२	दूरसे आयेको	दूरसे आयेको मार्ग में थके हुए को
१२३	१	साध्य	साध्यं
१२४	१	कुर्यान्नदत्त	कुर्यान्नादत्त
१२५	२	शिरे	शिरः
१२७	१७	यदि रामा	यदि रमा
१२७	१८	तनयोत्पत्ति	तनयोत्पत्तिः
१२८	६	नराणामीधको	नराणामधिको
१२८	११	ज्ञन	ज्ञान
१२८	१४	कर्णतालैः दूरीकृता	कर्णतालैर्दूरीकृताः
१२८	१४	मदान्धत्रुयद्धया	मदान्धबुद्धया
१२८	१८	मदान्धत	मदान्धता
१२८	१८	तालोंसे	तालोंसे दूर
१३०	१	तुंम्हरा	तुम्हारा